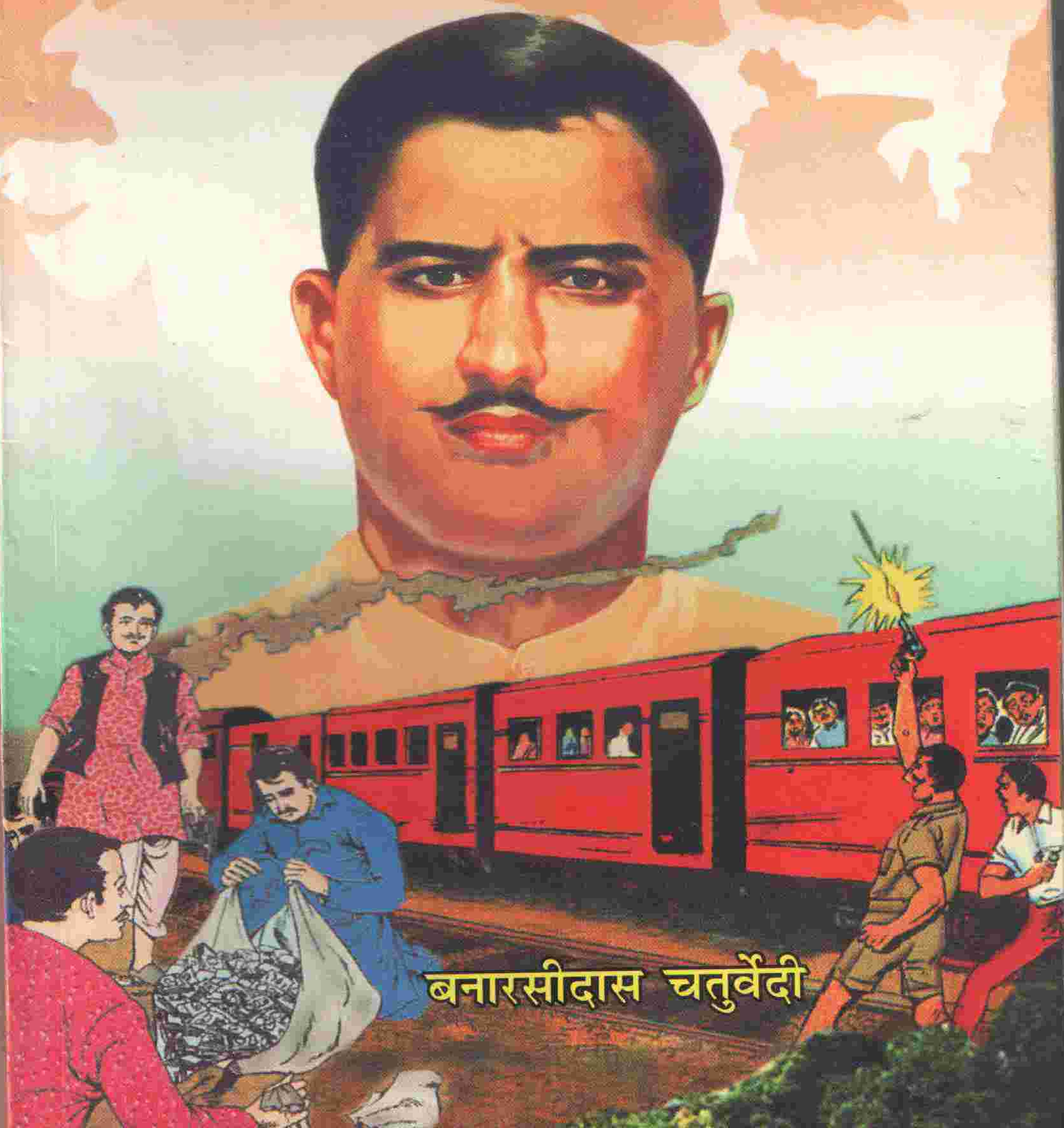
आत्मकथा

रामप्रसाद बिस्मिल



प्रकाशक : सत्यधर्म प्रकाशन

चलभाष : 08930737619

पुस्तक प्राप्ति-स्थान एवं निवास :

१. **आचार्य सत्यानन्द**

निवास : गुरुकुल भैयापुर लाढौत, रोहतक (हरयाणा

चलभाष : 08930737619, 09812560233

२. **हरयाणा साहित्य-संस्थान**

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर, हरयाणा। मो० ९४१६०५५[illegible]

३. **आर्यसमाज मन्दिर काकरिया**

रायपुर दरवाजे के बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)।

मो० ०९८७९७५६२८८, ०७९-२५४५४३७३

४. **कन्या गुरुकुल महाविद्यालय चोटीपुरा**

जिला ज्योतिबा फूले नगर (मुरादाबाद), उ०प्र० मो० ०९७१९०१३[illegible]

५. **आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा**

अहमदाबाद (गुजरात) मो० ०७९-२२८१५२१६, ०९८२४३३२३३८

संस्करण : सन् २०१२ ई०

मूल्य : ७० रुपये

मुद्रक राधा प्रेस,

२४६५, कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१

प्रकाशकीय

देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ,रामप्रसाद 'बिस्मिल' द्वारा गोरखपुर जेल में फांसी से दो दिन पूर्व लिखकर पूर्ण की गई '**आत्मकथा**' केवल जीवन कहानी ही नहीं है अपितु एक करुण रस का एक गद्यकाव्य है। उनकी लेखन शैली इतनी मार्मिक है कि इसको पढ़कर हृदय द्रवित हो उठता है और वह करुणा के आंसू बनकर बह चलता है। देश को अंग्रेजी साम्राज्यवाद से आजाद कराने के लिए क्रान्तिकारियों ने क्या-क्या भयंकर कष्ट उठाए, उन सबकी कारुणिक जानकारी इस पुस्तक से मिलती है। आज के देश के सुविधाभोगी नेताओं को तो उनके कृतज्ञतापूर्ण स्मरण के लिए इस पुस्तक को पढ़ना ही चाहिए और युवकों को भी प्रेरणा पाने के लिए इसको पढ़ना चाहिए। आजादी के लिए शहीद होने वाले वीरों को जो व्यक्ति कृतज्ञतापूर्ण स्मरण नहीं करता वह कृतघ्न है। हमें आजादी दिलाने के लिए, हमारे सुखी भविष्य के लिए जो स्वयं फांसी के फंदे पर झूल गये, क्या उनका हम स्मरण भी नहीं कर सकते ? यह पुस्तक उनको स्मरण करने के लिए ही प्रकाशित की गई है। पुस्तक क्या है, शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि है। इसको पढ़कर आप भी श्रद्धांजलि में शरीक होवें और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करें। जो देश अपने देशभक्त बलिदानी वीरों को भुला देता है वह फिर से गुलाम हो जाता है। भावी गुलामी से बचने के का एक ही उपाय है कि आजादी का साहित्य जीवित रहे और उसको पढ़कर प्रत्येक नागरिक के मन में आजादी की भावना जागृत रहे।

यह '**आत्मकथा**' क्रान्तिकारी साहित्य की एक श्रेष्ठ पुस्तक है, शैली की दृष्टि से भी और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी। लेखन में ऐसा प्रवाह है कि ऐसे लगता है जैसे चित्रपट के समान प्रत्येक घटना साक्षात् दृश्यमान हो रही है। किन विपरीत और यातनापूर्ण परिस्थितियों में इस देश के क्रान्तिवीरों ने आजादी के लिए संघर्ष किया, वह इस पुस्तक से ज्ञात होता है। लक्ष्य को पाने के लिए वे लोग भूखों मरते थे, तन पर वस्त्र नहीं होते थे, हाथ में पैसा नहीं होता था, रोग ग्रस्त होने पर न दवा का

प्रबन्ध हो पाता था, न अस्पताल का। उनके परिवार भी इसी दशा में रहते थे। कोई पड़ौसी और ग्रामवासी उनको पूछता नहीं था, सहायता करने की बात तो दूर की है। जेलों में जाने पर मुकदमा लड़ने के लिए न पैसे का प्रबन्ध हो पाता था, न वकील का। अर्थाभाव में रोगग्रस्त होकर परिवार के सदस्य मौत के मुंह में चले जाते थे। फिर भी उन युवकों में देशभक्ति की भावना कम नहीं होती थी, उत्साह और उमंग से भरपूर रहते थे और अंग्रेजी साम्राज्यवाद को चैन की नींद नहीं सोने देते थे। अंग्रेजों को उनका भविष्य दिखाते रहते थे।

बर्बरता और यातना का व्यवहार करने में अंग्रेज सरकार दरिन्दगी की सारी सीमाएं पार कर चुकी थी। वह क्रूरता के बल पर देशभक्तों का दमन करना चाहती थी और देशभक्त हैं कि उसको बाहर का रास्ता दिखाने से पीछे नहीं हटते थे। न्याय का ढोंग करने वाली अंग्रेज सरकार ने दमन के सारे हथकंडे अपना रखे थे। एक लेख लिखने मात्र से सात से दस साल की सजा होती थी। पुस्तक लिखने पर काले पानी की सजा मिलती थी। बात-बात में फांसी की सजा सुना दी जाती थी। क्रान्ति का इतिहास बताता है कि सैकड़ों युवकों को फांसी पर चढ़ा दिया था, उनमें ऐसे भी लोग थे जो बिल्कुल निर्दोष थे। फिर भी बलिदान की परम्परा रुकी नहीं।

लेखक ने अपने अनुभवों के आधार पर युवकों को एक महत्त्वपूर्ण संदेश भी दिया है कि वे जोश में आकर हथियारों का मार्ग न अपनायें। पहले क्रान्ति का यदि वातावरण जनता में नहीं होता तो क्रान्ति अपने नागरिकों के हाथों ही असफल हो जाती है। क्रान्ति से पूर्व आजादी प्राप्त करने के अन्य उपाय अपनाने चाहिएं। जोश में होश न रखने पर उसका नुकसान खुद को ही उठाना पड़ता है। संकल्प कीजिए, कि आप इस पुस्तक को स्वयं पढ़ेंगे और दूसरों को पढ़ने की प्रेरणा देंगे; तो हम समझेंगे कि आप में देशभक्ति का जज्बा है, बलिदानियों के प्रति कृतज्ञता-भाव है।

-आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक

प्रकाशक

सम्पादकीय

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ आत्मकथा

आत्मचरित लिखना कोई आसान काम नहीं, क्योंकि पहले तो अपने-आप को पहचानना ही मुश्किल है और फिर पाठकों के सम्मुख अपनी जिन्दगी के किन अंशों को लाना उचित है और किनको न लाना, यह निर्णय करना कठिन है; और इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या हमारे जीवन में कोई ऐसी विशेष बात है भी, जिसका वर्णन किया जाए ? वैसे तो यदि कोई निर्जीव व्यक्तित्व वाला भी ईमानदारी से भी अपनी निर्जीवता का वर्णन कर सके और उसके कारण भी बतला सके तो वह एक मनोरंजक तथा उपदेशप्रद आत्मचरित लिख सकता है, पर दूसरों के जीवन में स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मचरित लिखना किसी सजीव व्यक्तित्व वाले पुरुष का ही काम है।

हिन्दी तथा अंग्रेजी के अनेक आत्मचरितों को पढ़ने का अवसर हमें मिला है और बिना किसी संकोच के हम कह सकते हैं कि राम प्रसाद 'बिस्मिल' का आत्मचरित हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आत्मचरित है। जिन परिस्थितियों में यह लिखा गया था, उनके बीच में से गुजरने का मौका लाखों में एकाध को ही मिल सकता है। जरा इस वाक्य पर ध्यान दीजिए-

"....आज 16 दिसम्बर, 1927 ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं, जबकि 19 दिसम्बर, 1927 ई० सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत् 1984 वि०) को साढ़े छः बजे प्रातःकाल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी ही।"

और 19 दिसम्बर को वन्देमातरम् और भारत माता की जय कहते हुए वे फाँसी के तख्ते के निकट गए। चलते समय वह कह रहे थे—

"मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूं, न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तन में जान, रगों में लहू रहे,
तेरा ही जिक्र या तेरी ही जुस्तजू रहे।"

तत्पश्चात् उन्होंने कहा—

"I wish the downfall of the British Empire."

"मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूं।" फिर वह तख्ते

पर चढ़े और '**विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि**' मन्त्र का जाप करते हुए फन्दे से झूल गए।

वह शानदार मौत जो 'बिस्मिल' को प्राप्त हुई, शायद लाखों में दो-चार को ही मिल सकती है।

बिस्मिल का जन्म सन् 1897 में हुआ था और सन् 1927 में वह शहीद हुए, यानी कुल जमा उन्होंने तीस वर्ष की उम्र पाई, जिनमें 11 वर्ष क्रान्तिकारी जीवन में व्यतीत हुए।

क्या भाषा और क्या भाव, दोनों की दृष्टियों से बिस्मिल का आत्म-चरित्र एक अद्भुत ग्रन्थ है। जब हमने पहले-पहल पुस्तक को समाप्त किया, तो हम स्तब्ध रह गए। सोचने लगे कि इतना महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ इतने वर्षों तक उपेक्षित क्यों पड़ा रह गया? निस्सन्देह 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, फिर भी स्वाधीनता प्राप्ति के बाद तो वह छप ही सकती थी। शायद उससे पहले भी छप जाती। बहुत कुछ सोचने के बाद हम इस परिणाम पर पहुंचे कि सारा दोष उस कृतघ्नतापूर्ण वातारण का है, जो इस देश में वर्षों से व्याप्त है। क्या राजनीतिक और क्या साहित्यिक दोनों ही क्षेत्रों में कृतज्ञता नामक गुण का लोप हो रहा है और उसकी जिम्मेदारी मुख्यत: लेखकों तथा समालोचकों पर है। पिछले वर्षों में सैकड़ों-सहस्त्रों ही बृथापुष्ट पोथे हिन्दी प्रकाशकों ने छापे होंगे, पर बिस्मिल के इस ओजस्वी आत्मचरित पर किसी की निगाह नहीं पड़ी! क्या डेढ़-सौ पृष्ठ की किताब का छापना कोई असम्भव कार्य था? पर रीडरबाजी में व्यस्त हिन्दी लेखकों तथा प्रकाशकों में इतनी कल्पनाशक्ति या जीवन शक्ति कहां है, जो वे बिस्मिल के उज्ज्वल आत्मचरित की ओर देखते!

क्या हाथ देखता है मेरा छोड़ दे तबीब?
ह्यां जान ही बदन में नहीं नब्ज क्या चले?

जिस कृतघ्न हिन्दी जगत् में शहीद शिरोमणि गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा जेल में किया हुआ विक्टर ह्यूगो के 'लै मिजरेबिल' का अनुवाद पच्चीस-छब्बीस वर्ष से पड़ा हुआ है, वहां बिस्मिल की आत्मकथा को कौन पूछता? भला हो श्री रामलालजी पुरी का, जिन्होंने मेरे आग्रह पर इस ग्रन्थ को छापना स्वीकार कर लिया।

बिस्मिल ने अपने पूर्वजों का जो वृत्तान्त प्रारम्भिक पृष्ठों में दिया है, बड़ा आकर्षक है। वे लोग ग्वालियर राज्य के चम्बल के किनारे के ग्रामों के निवासी थे। बिस्मिल के बाबा गृहकलह के कारण अपना गांव

छोड़कर शाहजहांपुर आ बसे थे। यहां उनकी दादी को जो घोर कष्ट सहने पड़े उसकी कथा बड़ी हृदय-वेधक है। बिस्मिल ने जो कुछ लिखा है वह अपने हृदय के रक्त से लिखा है और कहीं-कहीं तो उनका गद्य अपनी भाषा तथा भाव के कारण उच्च कोटि के काव्य की सीमा तक पहुंच गया है। उदाहरण के लिए अशफाक पर लिखे गए उनके शब्द गद्य काव्य कहे जा सकते हैं—

"मुझे यदि सन्तोष है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेख योग्य हो गई कि अशफाक उल्ला ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया। जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनेण्ट) ठहराया गया और जज ने हमारे मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में भी जयमाला (फाँसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन सम्पत्ति को देश सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देश सेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवा में अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृभूमि की भेंट चढ़ा दिया।"

'असगर' हरीम इश्क में हस्ती ही जुर्म है,
रखना कभी न पांव यहां सिर लिए हुए।

यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि काकोरी केस के अभियुक्तों में अशफाक का चरित्र ही सर्वश्रेष्ठ रहा, अतः उनके बलिदान पर बिस्मिल का अभिमान सर्वथा स्वाभाविक था।

अपनी पूज्य माता जी के विषय में लिखते हुए भी बिस्मिल की कलम ने कमाल कर दिखाया है—

"इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक तृष्णा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःखपूर्ण संवाद सुनाया जाएगा। मां, मुझे विश्वास है कि तुम यह समझकर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता **'भारत माता'** की सेवा में अपने जीवन को बलि-वेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी

कुक्षि को कलंकित न किया। अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जाएगा, तब उसके किसी पृष्ठ पर उज्ज्वल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जाएगा।''

बिस्मिल ने आगे चलकर लिखा था—

''जन्मदात्री ? वर दो कि अन्तिम समय भी मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरण-कमलों को प्रमाण कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करूँ।''

निस्सन्देह पूज्य माता के आशीर्वाद से बिस्मिल ने सर्वथा धैर्यपूर्वक अपने प्राणों का बलिदान किया। इस आत्मचरित की उपमा हम किसी महत्त्वपूर्ण नाटक से दे सकते हैं, जिसके दृश्य एक-से-एक बढ़कर रोमांचकारी हों। एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य आता है और हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाता है। जहां बिस्मिल की निर्भयता, दृढ़ता और लगन तथा नेतृत्व का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है, वहां उनके मनुष्यत्व की भी गहरी छाप पड़ती है। विश्वासघात करके वह आसानी से भाग सकते थे, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। भागने के कई मौके-उन्होंने जान-बूझकर छोड़ दिये।

पुस्तक में स्पष्टवादिता है अपने संगठन की त्रुटियों का जिक्र है और साथी-संगियों की खरी आलोचना भी है। बन्धुवर श्रीकृष्णदत्त पालीवाल ने हमें बताया था कि पुस्तक के कुछ अंश इस कारण छोड़ दिये थे कि उनमें जरूरत से ज्यादा स्पष्टवादिता थी। यह सम्भव है कि अपने साथी संगियों पर लिखे गए उनके विवरण में कुछ कठोरता प्रतीत हो,शायद वे भ्रमात्मक भी हों, पर हमें यह बात न भूलनी चाहिए कि बिस्मिल अत्यन्त असाधारण परिस्थिति में अपना आत्मचरित लिख-लिखकर जेल से बाहर भेज रहे थे। **आश्चर्य इस बात का है कि उन्होंने अपने मस्तिष्क का सन्तुलन इतनी मात्रा में किस प्रकार कायम रखा!** बिस्मिल लिखते हैं—

''अन्त में अधिकारियों ने यह इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का सम्बन्ध बताकर कुछ बोलशेविक सम्बन्ध के विषय में अपने बयान दे दूं, तो वह मुझे थोड़ी-सी सजा कर देंगे और थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैण्ड भेज देंगे और पन्द्रह हजार रुपये पारितोषिक सरकार से दिला देंगे। मैं मन ही मन बहुत हंसता था। अन्त में एक दिन फिर मुझसे जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आए। मैंने अपनी कोठरी से निकलने से ही इन्कार कर दिया। वह कोठरी में आकर

बहुत-सी बातें करते रहे, अन्त में परेशान होकर चले गए।''

बिस्मिल यद्यपि कुल जमा तीस वर्ष के ही थे, पर उनकी बुद्धि परिपक्व हो चुकी थी। तत्कालीन परिस्थिति में वह सशस्त्र क्रान्ति की निरर्थकता को समझ गये थे और उन्होंने लिखा था—

''नवयुवकों क्रो मेरा अन्तिम सन्देश यही है कि वे रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्यागकर सच्चे देश सेवक बनें। पूर्ण स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें।''

बिस्मिल के इस आत्मचरित के मुकाबले का ग्रन्थ केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं, वरन् भारत की अन्य भाषाओं के साहित्य में भी मुश्किल से मिलेगा।

चैकोस्लोवाकिया के शहीद फूचिक ने भी ऐसी ही परिस्थिति में अपना चरित बिस्मिल के आत्मचरित के सोलह वर्ष बाद लिखा था और वह भारत की नौ भाषाओं में प्रकाशित हा चुका है! हमारे साम्यवादी भाई इस बात पर अभिमान करते हैं पर बिस्मिल का आत्मचरित एक बार छप कर जब्त हुआ सो फिर दूसरी बार तीस वर्ष बाद छप रहा है!

हम लोगों में से प्रायः सभी खाट पर पड़ कर मरेंगे—कोई ज्वर से, तो कोई निमोनिया से और कोई अन्य बीमारी से और कितने ही जीवन में ही पिलपिले दिमाग के बनकर मृतावस्था को प्राप्त हो जाएंगे, पर बिस्मिल-जैसी शानदार मृत्यु शायद ही किसी को प्राप्त होगी।

बिस्मिल ने आत्मचरित का प्रारम्भ इन पंक्तियों से किया है—

''क्या ही लज्जत है कि रग-रग से यह आती है सदा
दम न ले तलवार जब तक जान बिस्मिल में रहे।''

और अन्त इन शब्दों से किया—

''मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।''

ज्योतिष में हमारा विश्वास नहीं, भविष्यवाणी हम करते नहीं, पर इतना हम अवश्य कह सकते हैं कि आज नहीं तो कल बिस्मिल का यह आत्मचरित हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ चरित घोषित किया जाएगा और केवल भारतीय भाषाओं में ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी, रूसी तथा अन्य भाषाओं में भी इसके अनुवाद प्रकाशित होंगे।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

99, नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली।

पुनश्च—

इस आत्मकथा के विषय में हमने एक लेख पत्रों में छपवाया था। उसे पढ़कर बाबा राघवदास जी ने अपने ग्रामदान पद-यात्रा से 27 दिसम्बर, 1957 को एक पत्र हमें भेजा था।

पत्रोत्तर पता — ता० 27-12-57
रुद्रप्रणय आश्रम — सत् आनन वर्ष
नरसिंहपुर (मध्य प्रदेश) — ग्रामदान पद-यात्रा बालघाट

श्रीमान् पण्डित जी,

प्रणाम!

आपका अमर शहीद श्री रामप्रसाद जी 'बिस्मिल' की आत्मकथा पर लेख पढ़ा, (22-12-57 के साप्ताहिक हिन्दुस्तान में) और मुझे उससे बड़ी प्रेरणा मिली। क्या उस पुस्तक को मैं पढ़ सकूंगा? मैंने शाहजहांपुर पदयात्रा में उनकी पूज्य माता जी के दर्शन किए थे। उनके योगाभ्यास के स्थान पर गया था। जब गोरखपुर में उनको फाँसी हो गई थी उस समय उनके पावन दर्शन करने का अवसर पा चुका हूं। उनकी अस्थि को ताम्र-पात्र में मैंने रखकर (आश्रम बरहज देवरिया में) उस पर चबूतरा बनाया है। इस क्रान्तिकारी पुरुष को मैं कैसे भुला सकता हूं? उनके साथी श्री चन्द्रशेखर आजाद भी साथ में रहे हैं। उनसे भी मेरा फरारी जीवन में कुछ सहयोग रहा है। इस आत्मकथा का परिचय देकर मेरे लिए तो आपने एक आवश्यक प्रेरणा दी है। मेरा पत्रोत्तर पता—श्री कटारे वकील, बालघाट, मध्य प्रदेश। मैं इस समय मध्य प्रदेश में ग्रामदान पद-यात्रा कर रहा हूं।

—राघवदास

स्वर्गीय बाबा राघवदास का अपनी युवावस्था में क्रान्तिकारियों से घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके बारे में अधिकाधिक जानने के लिए वे अपने अन्तिम दिनों तक उत्सुक रहे। अपने स्वर्गवास के अठारह दिन पूर्व उन्होंने यह चिट्ठी मुझे भेजी थी। मैंने उन्हें उत्तर में लिख दिया था कि पुस्तक छपते ही उनकी सेवा में भेज दी जाएगी। हमें इस बात का दुःख है, कि यह पुस्तक श्रद्धेय बाबा जी के जीवन-काल में नहीं छप सकी।

अमर शहीद बिस्मिल की माता जी का एक शब्द चित्र, जिसे बन्धुवर श्री शिव वर्मा ने खींचा था, हमने परिशिष्ट में दे दिया है। वह

उनकी सन् 1946 की डायरी का एक पृष्ठ है। शायद उसके डेढ़ साल बाद उत्तर प्रदेश की सरकार ने उन्हें साठ रुपए महीना की पेंशन दी थी जो उन्हें अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक मिलती रही। उनके स्वर्गवास की तिथि का पता हम नहीं लगा सके। शायद पेंशन उन्हें सात-आठ वर्ष मिली।

बिस्मिल के छोटे भाई का स्वर्गवास कभी का हो चुका था। अब उनकी एक मात्र बहन श्रीमती शास्त्रीदेवी जीवित हैं। वे विधवा हैं। उनका पता है—कोसवां, जिला मैनपुरी। मेरे अनुरोध पर श्री ओंकारनाथ पाण्डेय मिश्राना, (मैनपुरी) उनसे मिलने गए थे। उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा है।

"मैंने श्रीमती शास्त्रीदेवी जी के दर्शन किए। वे बहुत वर्षों से विधवा हैं और उनका लड़का हरिश्चन्द्र सिंह पांचवीं कक्षा तक पढ़ा हुआ है और वह इस समय एक मोटर ट्रक पर काम करता है, श्रीमती शास्त्रीदेवी ने बतलाया कि उसके पास चालक का लाइसेंस नहीं है और वह बतौर क्लीनर के काम करता है। दशा दयनीय है। उनका मकान गली में एक कोठा है और उसके सामने एक आंगन, जिसकी चौड़ाई दो गज से अधिक न होगी। तीन-चार बीघा खेत हैं। हरिश्चन्द्र की आयु पच्चीस-छब्बीस वर्ष की होगी। अभी तक शाहजहांपुर में दोनों रहते थे। वहां इनकी मां को साठ रुपये माहवार पेंशन सन् 1947 से मिलती थी। उसी में इनका निर्वाह होता था, दो वर्ष हुए इनकी माता का देहान्त हो गया, अतः वहां का मकान पन्द्रह सौ रुपये में बेचकर यहां आ गईं। वे कहती थीं कि उस रुपए से कर्जा अदा किया गया। गत वर्ष हरिश्चन्द्र का विवाह भी हो गया है। इस समय इनके सामने तीन प्राणियों के निर्वाह का प्रश्न है। मेरी राय में इनको पचास रुपए माहवार की पेंशन मिल जाए तो इनका निर्वाह हो सकता है। हरिश्चन्द्र भी बिना किसी साधन के पढ़ने से रह गया और ऐसी दशा में अधिक अर्जन करने में असमर्थ है।"

उत्तर प्रदेशीय सरकार से हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि वह बिस्मिल की मां की पेंशन उनकी बहन के नाम जारी कर दे। इस पुण्य कार्य से बिस्मिल की आत्मा को स्वर्ग में कुछ सन्तोष तो होगा ही। श्री सम्पूर्णानन्द जी तथा श्री कमलापति जी त्रिपाठी की सहायता पर हमें विश्वास है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

भूमिका

परतन्त्र भारत की उत्पीड़क ब्रिटिश सरकार की अदालत ने पं० रामप्रसाद बिस्मिल को उत्तर प्रदेश में सशस्त्र क्रान्तिकारी दल का मुख्य संगठनकर्त्ता और नेता घोषित किया और काकोरी षड्यन्त्र केस में उन्हें प्राणदण्ड—सशस्त्र क्रान्तिकारी देशभक्ति का सर्वोच्च पुरस्कार – प्रदान किया। बिस्मिलजी ने देशवासियों से अपनी कुछ 'अन्तिम बात' के रूप में यह आत्मकथा गोरखपुर जेल में फाँसी की कोठरी में फाँसी पर झूलने के तीन दिन पहले तक अधिकारियों की नजर बचाकर लिखी थी। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"....आज 16 दिसम्बर, 1927 ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं, जबकि 19 दिसम्बर, 1927 सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत् 1984 वि०) को साढ़े छः बजे प्रात:काल इस शरीर को फाँसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है।"

और जिस मनोदशा से और जिस भावना से आत्मकथा लिखी गई थी, उसे शहीद की इन पंक्तियों में ही देखिए—

"......इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अन्तिम बात लिखकर देशवासियों के अर्पण कर दूं। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए। बड़ी कठिनता से वह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

महसूस हो रहे हैं बादे फना[१] के झोंके,
खुलने लगे हैं मुझ पर असरार[२] जिन्दगी के।
यदि देशहित मरना पड़े मुझको अनेकों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी,
हे ईश! भारत वर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।

क्या हिन्दी संसार में शहीद के स्वयं अपने रक्त से फाँसी की कोठरी में मृत्यु की छाया में लिखी कोई अन्य साहित्यिक कृति भी है? श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने इसकी तुलना, इस सम्बन्ध में नाजी जर्मनी के गेस्टापों के अत्याचारों के शहीद वीर जूलियस फूचिक की पुस्तक से की है, जिसका अनुवाद 'नोट्स फ्रॉम दि गैलोज' (Notes From the Gallows) के नाम से अंग्रेजी में हुआ हैऔर जिसके अनेकों अनुवादों के

---

१. नाश की हवा, २. भेद, रहस्य

कई संस्करण विभिन्न भाषाओं में सहस्रों की संख्या में निकल चुके हैं और वितरित हो चुके हैं। शहीद वीर जूलियस फूचिक ने भी अपने ये नोट्सअपनी काल कोठरी में अधिकारियों की नजर बचाकर कागज के टुकड़ों पर पैन्सिल से लिखे थे और उन्हें एक सहानुभूति रखने वाले जैक पहरेदार के द्वारा बाहर भेजता था। फूचिक ने यह जून 1943 में किया था। उससे सोलह वर्ष पूर्व श्री बिस्मिल ने भी अधिकारियों की नजर बचाकर अपनी फाँसी की कोठरी में अपनी यह आत्मकथा रजिस्टर के आकार के कागजों पर पेन्सिल से लिखी थी। इन कागजों को उन्होंने एक सहृदय जेल के वार्डर के हाथ बाहर गोरखपुर के सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता **'स्वदेश'** के सम्पादक **श्री दशरथप्रसाद द्विवेदी** के पास भेजा था। पूरी आत्मकथा तीन खेपों से बाहर आई थी। अन्तिम खेप तो बिस्मिल जी के फाँसी पाने के एक दिन पहले ही आई थी। दल के सदस्य श्री शिव वर्मा ने बिस्मिल जी के फाँसी पाने के एक दिन पूर्व उनकी माता जी के साथ एक सम्बन्धी का छद्म वेष बनाकर जेल में बिस्मिल जी से अन्तिम मुलाकात भी की थी। अन्त में आत्मकथा के ये सब कागज शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के पास पहुंचा दिये गए थे।

यहां यह उल्लेख कर देना जरूरी है कि बाहर क्रान्तिकारी दल में अत्यन्त व्यस्त भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि साथियों की राय यह हुई कि बिस्मिल जी के इस आत्मचरित के दल के लोगों में पारस्परिक अविश्वास, कटुता और अन्य प्रकार की वैयक्तिक कमजोरियों पर यथार्थ लेकिन आवश्यक से अधिक जोर पड़ गया है, जबकि उसके सन्तुलन में उन बातों और साथियों के उन गुणों का बखान प्रायः उतना नहीं हुआ है, जितना कि उचित रूप में होना चाहिए था, और जिनके कारण ही ये सब कमियां होते हुए भी ये संगठन चलते रहे और उनके कार्य कलाप में, आत्म बलिदान, बन्धु प्रेम, विश्वास, अनुशासन की भावना, सहन शक्ति की पराकाष्ठा की अभीष्ट अभिव्यक्ति सदैव प्रचुर मात्रा में होती रही। और यह बात तो है कि आत्मकथा में सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलनों के उस समय 'वक्त' के पहले की बात होने और क्रान्तिकारी की मनोदशा 'नकटा पन्थियों' जैसी होने की बात जो निराशा और अवसाद के स्वर में कही गई है, श्री भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद आदि साथियों को, जो प्राण होम रहे थे और अन्ततः जिन्होंने होम भी दिए, भला कैसे रुचिकर हो सकती थी ? हां, श्री अशफाकउल्ला के सम्बन्ध में बिस्मिल जी ने जो कुछ लिखा है उसे पढ़कर सब गद्‌गद्‌ हो गए थे। वह वृत्तान्त बड़ा ही स्फूर्तिप्रद है और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावना को

बढ़ाने वाला है। इसे सब मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते थे। फाँसी की कोठरी में लिखी गई इस आत्मकथा की प्रेरक शक्ति और भाव मूल्य से भला कौन सहृदय व्यक्ति इन्कार कर सकता था ? और एक शहीद की देश के लोगों के नाम वसीयत की गई इस धरोहर को कौन हजम कर सकता था ? परन्तु दूसरी ओर उस समय उसका प्रकाशन भी तो कोई आसान काम नहीं था। नाजी जर्मनी के परास्त हो जाने के बाद फूचिक की अमर कृति 'नोट्स फ्रॉम दि गैलोज' के प्रकाशन में तो जोखिम रहा ही नहीं गई थी। परन्तु ब्रिटिश सरकार के भारत में रहते हुए फाँसी की कोठरी में एक शहीद के द्वारा चोरी-छिपे लिखी गई और बाहर भेजी गई इस आत्मकथा के प्रकाशन में महान् जोखिम स्पष्ट ही था। और यह बड़े श्रेय की बात है कि यह आत्मकथा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी जी की देख-रेख में प्रताप प्रेस, कानपुर से प्रकाशित 'काकोरी के शहीद' नामक पुस्तक के आगमन में छपी। साथियों की राय में इस आत्मकथा के अन्त में जो अवसाद और निराशाजनक बाते आ गईं थीं अथवा पारस्परिक कटुता, वैमनस्य आदि पर अनावश्यक बल पड़ गया था, उसका सन्तुलन उक्त पुस्तक में प्रकाशित अन्य क्रान्तिकारियों के विवरणों से यत्किंचित सन्तोषप्रद रीति से हो गया।

विश्वास किया जाता है कि गणेशशंकर विद्यार्थी इस आत्मकथा को भली-भांति देख गए थे। इस पवित्र धरोहर में किसी को मीन-मेख करने, उसकी भाषा सुधारने आदि का कोई अधिकार नहीं, इस आत्मकथा के सम्पादन के सम्बन्ध में विद्यार्थीजी की यही धारणा रही। फिर भी आत्मकथा में भूल से भी ऐसी बातें नहीं जाने दी जा सकती थीं, जिनसे पुलिस को कुछ और सुराग मिलता और अन्य क्रान्तिकारी विपत्ति में पड़ते या अन्यथा सरकार का लाभ और स्वातन्त्र्य-आन्दोलन की क्षति होती। अतएव प्राप्त आत्मकथा में से वे बातें अपरिहार्य रूप में निकालीं या संशोधित की गई होंगी, जिनसे ऐसी कुछ हानि की आशंका स्पष्ट ही रही होगी।

आत्मकथा में पारस्परिक कटुता, वैमनस्य आदि की बातों पर जो जरूरत से ज्यादा जोर पड़ गया है तथा क्रान्तिकारी दल के जीवन का उज्ज्वल प्रकाशपूर्ण पक्ष यथेष्ट रूप में नहीं उभर पाया, उसका कारण भलीभांति समझा जा सकता है। यह आत्मकथा जेल में फाँसी की कोठरी में लिखी जा रही थी। सर्वविदित है कि फाँसी की सजा पाये कैदी को सबसे अलग एक अलहदा कोठरी रखा जाता है, उसके ऊपर एक विशेष पहरेदार चौकी नियुक्त रहती है, जो उस पर बराबर चौबीसों

घण्टे नजर रखती है। रोज सवेरे शाम नियमपूर्वक उसकी और उसकी कोठरी की तलाशी ली जाती है तथा बीच-बीच में अकस्मात् भी जेल के अधिकारियों द्वारा तलाशी ली जाती है। अतएव यह खतरा तो सदा ही था कि यह आत्मकथा कभी भी सरकार के हाथों में पड़ सकती थी। इसलिए क्रान्तिकारी दल के सदस्यों और उससे सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के नाम तो इसमें लिखे ही नहीं जा सकते थे, उनके कार्यों की ओर संकेत किया जाना भी उनके लिए खतरे से खाली नहीं था; और इस सबको उस समय प्रकाशित तो किसी भी भांति नहीं किया जा सकता था। अत: मजबूरी तौर पर ही दल के जीवन की सुनहरी बातों को बिस्मिल जी अपने आत्मचरित में नहीं दे सकते थे। श्री अशफाक-उल्ला खां को फाँसी की सजा हो चुकी थी अतएव उनके सम्बन्ध में बिस्मिल जी खुलकर लिख सकते थे और उसमें उन्होंने अपनी सहृदयता का पूरा परिचय दिया ही है।

अस्तु 'काकोरी के शहीद' में यह आत्मकथा श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की देख-रेख में छपी और इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद गुप्त सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन का बल बढ़ा ही, कम नहीं हुआ। बिस्मिल जी का 'दि हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएसन' श्री भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि के नेतृत्व में 'दि हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' या 'आर्मी' के रूप में पुनर्गठित हुआ और पहले से अधिक अच्छी तरह चला, यद्यपि उसमें भी ऐसे अविश्वास और कटुता की बातें हुईं, और लाहौर षड्यन्त्र केस चलने पर दल में पुन: अप्रूवर और अन्य भांति कमजोर लोग निकले, परन्तु उनमें से मृत्युंजयी अमर शहीद जितेन्द्रनाथ दास जैसे शक्तिशाली, भगतसिंह जैसे स्नेही विश्वासी आदर्श वीर भी निकले। दल में जो पारस्परिक विश्वास प्रेम और चारित्रिक दृढ़ता की अभिव्यक्ति होती थी, वह अविश्वास, कटुता और कमजोरी से कहीं अधिक थी और इसी के बल पर ऐसे दल चले और उन्होंने यशस्वी कार्य भी किए और जतीनदास, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि जैसे आदर्श-चरित्र देश के नौजवानों को मिले। देश को स्वतन्त्र कराने में जिन लोगों ने सहर्ष आत्मबलिदान किया है, उनको इस बलिदान के लिए प्रेरित करने में और उसके लिए शक्ति-प्रदान करने में इन आदर्श चरित्रों का कितना हाथ है, इसे कौन नाप सकेगा?

बिस्मिल जी की इस आत्मकथा और 'काकोरी के शहीद' में वर्णित अन्य देशभक्तों के त्याग और बलिदान के वर्णन ने व्यक्तिगत रूप में मुझे

कितना प्रभावित किया और मुझे कितना बल प्रदान किया, इसकी यहां चर्चा करना अनुचित न होगा। दल के जीवन में अन्य और सभी की भांति मुझे भी अविश्वास, कटुता आदि का सामना करना पड़ा, मेरे सामने भी साथी अप्रूवर (इकबाली माफीशुदा सरकारी गवाह) बनकर अपनी चमड़ी बचाने और साथियों को फंसाने आए। मुझे भी यह बुरा, बहुत बुरा लगा। परन्तु इसकी तुलना में जो आत्म-बलिदानपूर्ण स्नेह, विश्वास, सौहार्द मैं श्री चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि साथियों से प्राप्त कर चुका था उस समय भी कर रहा था तथा श्री रामप्रसाद बिस्मिल आदि पुराने शहीदों और जतीनदास आदि की शहादत से जो बल मुझे मिल रहा था, उसने मेरे मन में किसी प्रकार की कटुता या निराशा नहीं उत्पन्न होने दी। इन्हीं अप्रूवरों पर मैंने दल की आज्ञानुसार गोली चलाई, सो किसी वैयक्तिक कटुता की भावना से नहीं। वास्तव में मेरे मन में अपने इन साथियों में कमजोरी आ जाने के प्रति दयामिश्रित खेद ही था। इन अप्रूवरों के विश्वासघात के प्रत्यक्ष अनुभव के बाद भी उन पर गोली चलाकर फाँसी जाने की तैयारी का बल भी मुझे बिस्मिल आदि शहीदों के चरित्र, साथियों की दृढ़ता, आत्म-बलिदानपूर्ण स्नेह, विश्वास आदि की अनुभूति से ही मिला था।

बिस्मिल जी की इस आत्मकथा का ऐतिहासिक मूल्य तो स्पष्ट ही है। इससे सशस्त्र गुप्त षड्यन्त्रात्मक स्वातन्त्र्य संगठनों के उत्थान, संचालन, विघटन, पुर्नगठन आदि पर यथार्थवादी प्रकाश पड़ता है। इसके सिवाय स्वातन्त्र्य के लिए देश के नौजवानों की छटपटाहट, उनके प्राणों के स्पन्दन की छटा इसमें देखी जा सकती थी। पं० रामप्रसाद बिस्मिल किसी बिशिष्ट सुखी धनाढ्य परिवार में उत्पन्न नहीं हुए थे। कोई बड़ी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्नता का आडम्बर भी उनके साथ संलग्न नहीं था। वे स्वाधीनता के लिए छटपटाती हुई आम जनता और उसके लिए वीरता से प्राणोत्सर्ग कर सकने की साध रखने वाले नौजवानों के सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। वे एक सीधे-सादे वीर देशभक्त थे, कोई प्रौढ़बुद्धि विचारक नहीं। देश के नौजवानों की आम राजनीतिक चेतना जैसे अनुभव से समाजवादी मार्ग की ओर विकसित होती जा रही थी, इसे बिस्मिल जी की इस आत्मकथा में भी भली-भांति देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी फाँसी की कोठरी में यह सच्चे दिल से अनुभव किया कि जिस क्रान्तिकारी (आतंकवादी) मार्ग पर वे स्वयं और वे गुप्त षड्यन्त्रवादी संगठन चलते रहे हैं, उनसे कुछ विशेष लाभ नहीं होगा। यद्यपि इस तथ्य की ओर भी उन्होंने दुर्लक्ष नहीं किया है कि इस मार्ग पर चलकर

नौजवानों ने जो बलिदान किया है वह व्यर्थ नहीं हुआ और देश की आम राजनीतिक जागृति में और स्वातन्त्र्य संघर्ष के विकास में इन बलिदानों का महान् मूल्य है; फिर भी उन्होंने फाँसी के तख्ते से अपनी इस अनुभूति को प्रकाशित करते हुए अपने साथियों और देश के नौजवानों और समस्त स्वातन्त्र्य प्रेमियों को सामूहिक संगठनों, किसान-मजदूर आन्दोलनों में तथा कांग्रेस में कार्य करने के लिए कहा। यद्यपि ऐसे गुप्त सशस्त्र आतंकवादी संगठन तुरन्त ही समाप्त नहीं हो गए, परन्तु ऐसे संगठनों में काम करने वालों पर और आम सशस्त्र विद्रोहात्मक आन्दोलन पर इसका असर पड़ा ही, क्योंकि यह अनुभूति केवल श्री बिस्मिल जी की ही अनुभूति नहीं थी, यह तो समय की आम अनुभूति भी थी। बिस्मिल जी ने लिखा है: "भारत की भावी सन्तान तथा नवयुवक वृन्द क्रान्तिकारी (गुप्त सशस्त्र-भ०) संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देश-सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें, श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों (पूंजीपतियों-भ०) के अत्याचारों से बचावें। भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती है। मुख्य-श्रेणी के लोग किसी न किसी प्रकार इन्हीं के आश्रित हैं।" बिस्मिल जी के यह सब लिखने के पहले ही उनके दल के अवशिष्ट लोगों में से सर्वश्री शिव वर्मा, विजय कुमार सिन्हा, सुरेन्द्रनाथ पाण्डे, ब्रह्मदत्त आदि कानपुर के कार्यकर्त्ता गुप्त सशस्त्र क्रान्तिकारी संगठन में काम करने के साथ श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के नेतृत्व में कानपुर मजदूर सभा में काम करने लगे थे (यह सूचना सम्भवतः बिस्मिल जी को नहीं मिली थी) और पंजाब में 'नौजवान भारत सभा' कायम हो चुकी थी, और उसका घोषणा-पत्र भी प्रकाशित हो चुका था। इस सभा के कर्णधारों में थे—श्री भगतसिंह, भगवतीचरण बोहरा, सुखदेव, केदारनाथ सहगल, सोहनसिंह जोश आदि। और यह इसी प्रवृत्ति का परिणाम था कि बिस्मिल जी का संगठन 'दि हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद आदि के नेतृत्व में 'दि हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' या 'आर्मी' के रूप में विकसित हुआ। 'नौजवान भारत सभा' एक प्रकार से इसी का एक खुला पक्ष था, जो खुले आन्दोलन विद्यार्थी संगठन, मजदूर संगठन, किसान संगठन आदि की ओर बढ़ा। वास्तव में कांग्रेस के नीचे सन् 1930 और 1932 के दो महान् जनआन्दोलनों के अनुभव, मजदूर हड़तालों, किसान सत्याग्रहों की शक्ति के अनुभव, तथा कांग्रेस में समाजवादी दल के संगठन बन जाने तथा साम्यवादी दल के अधिक

सक्रियता से राजनीतिक क्षेत्र में आ जाने के बाद ही गुप्त षड्यन्त्रात्मक आतंकवादी संगठनों की परिसमाप्ति हुई।

सबसे बड़ी तो यह बात है कि यह 'आत्मकथा' उस श्रद्धा और विश्वास और प्रेम का भव्य स्मारक है, जो आम जनता शहीद क्रान्तिकारियों के प्रति रखती रही। बिस्मिल जी फाँसी की कोठरी में इस आत्मकथा को लिख सके, यह बात बिस्मिल जी के लिए जितने श्रेय की है, उससे कहीं अधिक उन अनपढ़ या मामूली पढ़े-लिखे जेल वार्डरों के श्रेय की है, जिनके पहरे में या संरक्षण में यह लिखी गई। फांसी की सजा पाए हुए कैदी पर चौबीसों घण्टे पहरेदारों की नजर रहती है। कौन जानता है कितने पहरेदार बदले होंगे और न जाने कितने पहरेदारों और जेल के अन्य अधिकारियों के सहयोग से इस आत्मकथा का लिखा जाना सम्भव हुआ होगा। कितने लोगों ने इसके सम्बन्ध में जोखिम उठाया होगा, बिना किसी यश की आशा के, केवल शहीद क्रान्तिकारी देशभक्तों के प्रति अपनी स्वाभाविक श्रद्धा और प्रेम के कारण, जो वस्तुतः स्वातन्त्र्य प्रेम का ही स्वरूप है। और उन बेचारों को आज भी कोईश्रेय, कोई यश, नहीं मिला। हम उनका नाम भी नहीं जानते, जबकि स्वातन्त्र्य आन्दोलन में दो-तीन मास की कैद पाए हुए लोग फूलमालाएं पहने फोटो अपने बड़े अभिमान से प्रदर्शित करते रहते हैं तथा एतदर्थ प्राप्त राजनीतिक पीड़ित होने के सर्टिफिकेट को प्रदर्शित करके आर्थिक लाभ उठा सकते हैं! जिस जैक शहीद जूलियस फूचिक और फाँसी की कोठरी से लिखकर भेजे गए उसके नोट्स की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, उनको बाहर लाने वाले जैक पहरेदार ए० कोलिन्सकी का नाम कृतज्ञतापूर्वक जूलियस की पत्नी ने उक्त पुस्तक के ऊपर अपने नोट में किया है। इसे हम अपनी लापरवाली कहें या कृतघ्नता कि हम आज स्वतन्त्र भारत में उन जेल वार्डरों का नामोल्लेख भी नहीं कर पा रहे हैं जिनको इस आत्मकथा के, फाँसी की कोठरी में लिखे जा सकने का और उसे बाहर आकर प्रकाशित हो सकने का अधिकांश श्रेय मिलना चाहिए।

अपने स्वातन्त्र्य के लिए प्राण होमने वाले शहीदों के प्रति स्वतन्त्र भारत की कृतज्ञता की भावना से यह आशा करना क्या कोई बड़ी बात होगी कि बिस्मिल जी की इस आत्मकथा की मूल हस्तलिखित प्रति को तलाश किया जाए और यदि वह मिल सके तो उसे राष्ट्रीय अभिलेखागार में या किसी शहीद संग्रहालय में सुरक्षित रखा जाए?

—भगवानदास माहौर

नरसिंहराव की टोरिया, झाँसी

विषय-सूची

परिशिष्ट

प्रथम खण्ड

आत्म-चरित्र

तोमरघार में चम्बल नदी के किनारे पर दो ग्राम आबाद हैं, जो ग्वालियर राज्य में बहुत ही प्रसिद्ध हैं, क्योंकि इन ग्रामों के निवासी बड़े उद्दण्ड हैं। वे राज्य की सत्ता की कोई चिन्ता नहीं करते। जमींदारों का यह हाल है कि जिस साल उनके मन में आता है राज्य को भूमि-कर देते हैं और जिस साल उनकी इच्छा नहीं होती, मालगुजारी देने से साफ इन्कार कर जाते हैं! यदि तहसीलदार या कोई राज्य का अधिकारी आता है तो ये जमींदार बीहड़ में चले जाते हैं और महीनों बीहड़ों में ही पड़े रहते हैं। उनके पशु भी वहीं रहते हैं और भोजनादि भी बीहड़ों में ही होता है। घर पर कोई ऐसा मूल्यवान् पदार्थ नहीं छोड़ते, जिसे नीलाम करके मालगुजारी वसूल की जा सके। एक जमींदार के सम्बन्ध में कथा प्रचलित है कि मालगुजारी न देने के कारण ही उनको कुछ भूमि माफी में मिल गई। पहले तो कई साल तक भागे रहे। एक बार धोखे से पकड़ लिये गए तो तहसील के अधिकारियों ने उन्हें बहुत सताया। कई दिन तक बिना खाना-पानी के बंधा रहने दिया। अन्त में जलाने की धमकी दे, पैरों पर सूखी घास डालकर आग लगवा दी। किन्तु उन जमींदार महोदय ने भूमि-कर देना स्वीकार न किया और यही उत्तर दिया कि ग्वालियर महाराज के कोष में मेरे कर न देने से ही घाटा न पड़ जाएगा। संसार क्या जानेगा कि अमुक व्यक्ति उद्दण्डता के कारण ही अपना समय व्यतीत करता है। राज्य को लिखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उतनी भूमि उन महाशय को माफी में दे दी गई। इसी प्रकार एक समय इन ग्रामों के निवासियों को एक अद्भुत खेल सूझा। उन्होंने महाराज के रिसाले के साठ ऊँट चुराकर बीहड़ों में छिपा दिए। राज्य को लिखा गया, जिस पर राज्य की ओर से आज्ञा हुई कि दोनों ग्राम तोप लगाकर उड़वा दिये जाएं। न जाने किस प्रकार समझाने-बुझाने से ऊँट वापस किए गए और अधिकारियों को समझाया गया कि इतने बड़े राज्य में थोड़े से वीर लोगों का निवास है, इनका विध्वंस न करना ही उचित होगा। तब तोपें लौटाई गईं और ग्राम उड़ाये जाने से बचे। वे लोग अब राज्य-निवासियों को तो अधिक नहीं सताते, किन्तु बहुधा अंग्रेजी राज्य में आकर उपद्रव

कर जाते हैं और अमीरों के मकानों पर छापा मारकर रात-ही-रात बीहड़ में दाखिल हो जाते हैं। बीहड़ में पहुंच जाने पर पुलिस या फौज कोई भी उनका बाल बांका नहीं कर सकती। ये दोनों ग्राम अंग्रेजी राज्य की सीमा से लगभग पन्द्रह मील दूरी पर चम्बल नदी के तट पर हैं। यहीं के एक प्रसिद्ध वंश में मेरे पितामह **श्री नारायणलाल जी** का जन्म हुआ था। वह कौटुम्बिक कलह और अपनी भाभी के असहनीय दुर्व्यवहार के कारण मजबूर हो अपनी जन्मभूमि छोड़ इधर-उधर भटकते रहे। अन्त में अपनी धर्मपत्नी और दो पुत्रों के साथ वह शाहजहांपुर पहुंचे। उनके इन्हीं दो पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र **श्रीमुरलीधर जी** मेरे पिता हैं। उस समय इनकी अवस्था आठ वर्ष और उनके छोटे पुत्र-मेरे चाचा- (**श्रीकल्याणमल**) की उम्र छः वर्ष की थी। इस समय यहां दुर्भिक्ष का भयंकर प्रकोप था।

दुर्दिन

अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् शाहजहांपुर में एक अत्तार महोदय की दुकान पर श्रीयुत नारायणलालजी को तीन रुपये मासिक वेतन की नौकरी मिली। तीन रुपये मासिक में दुर्भिक्ष के समय चार प्राणियों का किस प्रकार निर्वाह हो सकता था? दादीजी ने बहुत प्रयत्न किया कि अपने आप केवल एक समय आधे पेट भोजन करके बच्चों का पेट पाला जाय, किन्तु फिर भी निर्वाह न हो सका। बाजरा, कुकनी, सामा ज्वार इत्यादि खाकर दिन काटने चाहे, किन्तु फिर भी गुजारा न हुआ तब आधा बथुआ, चना या कोई दूसरा साग, जो सब से सस्ता हो उसको लेकर, सबसे सस्ता अनाज उसमें आधा मिलाकर थोड़ा-सा नमक डालकर उसे स्वयं खातीं, लड़कों को चना या जौ की रोटी देतीं और इसी प्रकार दादाजी भी समय व्यतीत करते थे। बड़ी कठिनता से आधे पेट खाकर दिन तो कट जाता, किन्तु पेट में घोटूं दबाकर रात काटना कठिन हो जाता। यह तो भोजन की अवस्था थी, वस्त्र तथा रहने के स्थान का किराया कहां से आता? दादीजी ने चाहा कि भले घरों में कोई मजदूरी मिल जाए, किन्तु अनजान व्यक्ति का, जिसकी भाषा भी अपने देश की भाषा से न मिलती हो, भले घरों में सहसा कौन विश्वास कर सकता था? कोई मजदूरी पर अपना अनाज भी पीसने को न देता था! डर था कि दुर्भिक्ष का समय है, खा लेगी। बहुत प्रयत्न करने के बाद दो -महिलाएं अपने घर पर अनाज पिसवाने पर राजी हुईं, किन्तु पुरानी

काम करने वालियों को कैसे जवाब दें ? इसी प्रकार अड़चनों के बाद पांच-सात सेर अनाज पीसने को मिल जाता, जिसकी पिसाई उस समय एक पैसा प्रति पंसेरी थी। बड़ी कठिनता से आधे पेट एक समय भोजन करके तीन-चार घण्टों तक पीसकर एक पैसा या डेढ पैसा मिलता। फिर घर पर आकर बच्चों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता। दो-तीन वर्ष तक यही अवस्था रही। बहुधा दादाजी देश को लौट चलने का विचार प्रकट करते, किन्तु दादीजी का यही उत्तर होता कि जिनके कारण देश छूटा, धन-सामग्री सब नष्ट हुई और ये दिन देखने पड़े अब उन्हीं के पैरों में सिर रखकर दासत्व स्वीकार करने से इसी प्रकार प्राण दे देना कहीं श्रेष्ठ है, ये दिन सदैव न रहेंगे। सब प्रकार के संकट सहे, किन्तु दादीजी देश को लौटकर न गईं।

चार-पांच वर्ष में जब कुछ सज्जन परिचित हो गए और जान लिया कि स्त्री भले घर की है, कुसमय पड़ने से दीन-दशा को प्राप्त हुई है, तब बहुत-सी महिलाएं विश्वास करने लगीं। दुर्भिक्ष भी दूर हो गया था। कभी-कभी किसी सज्जन के यहां से कुछ दान मिल जाता, कोई ब्राह्मण-भोजन करा देता। इसी प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कई महानुभावों ने, जिनके कोई सन्तान न थी और धनादि पर्याप्त था, दादीजी को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिए कि वह अपना एक लड़का उन्हें दे दें और जितना धन मांगें उनकी भेंट किया जाय। किन्तु दादीजी आदर्श माता थीं, उन्होंने इस प्रकार के प्रलोभनों की किंचित्-मात्र भी परवाह न की और अपने बच्चों का किसी-ना-किसी प्रकार पालन करती रहीं।

मेहनत-मजदूरी तथा ब्राह्मणवृत्ति द्वारा कुछ धन एकत्रित हुआ। कुछ महानुभावों के कहने से पिताजी ने किसी पाठशाला में शिक्षा पाने का प्रबन्ध कर दिया गया। श्री दादाजी ने भी कुछ प्रयत्न किया, उनका वेतन भी बढ़ गया और वह सात रुपये मासिक पाने लगे। इसके बाद उन्होंने नौकरी छोड़, पैसे तथा दुअन्नी, चवन्नी इत्यादि बेचने की दुकान की। पांच-सात आने रोज पैदा होने लगे। जो दुर्दिन आये थे, प्रयत्न तथा साहस से दूर होने लगे। इसका सब श्रेय हमारी दादीजी को ही है। जिस साहस तथा धैर्य से उन्होंने काम लिया वह वास्तव में किसी दैवी शक्ति की सहायता ही कही जाएगी। अन्यथा एक अशिक्षित ग्रामीण महिला का क्या सामर्थ्य है कि वह नितान्त अपरिचित स्थान में जाकर मेहनत-मजदूरी करके अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालन करते हुए उनको

शिक्षित बनाये और फिर ऐसी परिस्थियों में, जब कि उसने कभी अपने जीवन में घर से बाहर पैर न रखा हो और जो ऐसे कट्टर देश की रहने वाली हो कि जहां पर प्रत्येक हिन्दू प्रथा का पूर्णतया पालन किया जाता हो, जहां के निवासी अपनी प्रथाओं की रक्षा के लिए प्राणों की किंचित्-मात्र भी चिन्ता न करते हों। किसी ब्राह्मण, क्षत्री या वैश्य की कुलवधू का क्या साहस, जो डेढ़ हाथ का घूंघट निकाले बिना एक घर से दूसरे घर चली जाए। शूद्र जाति की वधुओं के लिए भी यही नियम है कि वे रास्ते में बिना घूंघट निकाले न जाएं। शूद्रों का पहनावा ही अलग है, ताकि उन्हें देखकर ही दूर से पहचान लिया जाए कि यह किसी नीच जाति की स्त्री है। ये प्रथाएं इतनी प्रचलित हैं कि उन्होंने अत्याचार का रूप धारण कर लिया है। एक समय किसी चमार वधू, जो अंग्रेजी राज्य से विवाह करके गई थी, कुल-प्रथानुसार जमींदार के घर पैर छूने के लिए गई। वह पैरों में बिछुवे (नूपुर) पहने हुई थी और सब पहनावा चमारों का पहने थी। जमींदार महोदय की निगाह उसके पैरों पर पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि चमार की बहू है। जमींदार साहब जूता पहनकर आए और उसके पैरों पर खड़े होकर इस जोर से दबाया कि उसकी अंगुलियां कट गईं! उन्होंने कहा कि यदि चमारों की बहुएं बिछुएं पहनेंगी तो ऊंची जाति के घर की स्त्रियां क्या पहनेंगी? ये लोग नितान्त अशिक्षित तथा मूर्ख हैं, किन्तु जाति-अभिमान में चूर रहते हैं। गरीब-से-गरीब अशिक्षित ब्राह्मण या क्षत्री, चाहे वह किसी आयु का हो, यदि शूद्र जाति की बस्ती में से गुजरे तो चाहे कितना ही धनी या वृद्ध कोई शूद्र क्यों न हो, उसको उठकर पालागन या जुहार करनी ही पड़ेगी। यदि ऐसा न करे तो उसी समय वह ब्राह्मण या क्षत्री उसे जूतों से मार सकता है और सब उस शूद्र का ही दोष बताकर उसका तिरस्कार करेंगे! यदि किसी कन्या या बहू पर व्यभिचारिणी होने का सन्देह किया जाए तो उसे बिना किसी विचार के मारकर चम्बल में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसी प्रकार यदि किसी विधवा पर व्यभिचार या किसी प्रकार आचरण-भ्रष्ट होने का दोष लगाया जाए तो चाहे वह गर्भवती ही क्यों न हो, उसे तुरन्त ही काटकर चम्बल में पहुंचा दें और किसी को कानोंकान भी खबर न होने दें! वहां के मनुष्य भी सदाचारी होते हैं। वे सबकी बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझते हैं। स्त्रियों की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण देने में भी कभी नहीं हिचकिचाते। इस

प्रकार के देश में विवाहित होकर सब प्रकार की प्रथाओं को देखते हुए भी इतना साहस करना यह दादाजी का ही काम था।

परमात्मा की दया से दुर्दिन समाप्त हुए। पिताजी कुछ शिक्षा पा गए और एक मकान भी श्री दादाजी ने खरीद लिया। दरवाजे-दरवाजे भटकने वाले कुटुम्ब को शान्तिपूर्वक बैठने का स्थान मिल गया और फिर श्री पिताजी के विवाह करने का विचार हुआ। दादी जी, दादा जी तथा पिताजी के साथ अपने मायके गईं। वहीं पिताजी का विवाह कर दिया। वहां दो-चार मास रहकर सब लोग वधू की विदा कराके साथ लिवा लाए।

गार्हस्थ्य जीवन

विवाह हो जाने के पश्चात् पिताजी म्युनिसिपैलिटि में पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर नौकर हो गए। उन्होंने कोई बड़ी शिक्षा प्राप्त न की थी। पिताजी को यह नौकरी पसन्द ना आई। उन्होंने एक-दो साल के बाद नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ करने का प्रयत्न किया और कचहरी में सरकारी स्टाम्प बेचने लगे। उनके जीवन का अधिक भाग इसी व्यवसाय में व्यतीत हुआ। साधारण श्रेणी के गृहस्थ बनकर उन्होंने इसी व्यवसाय द्वारा अपनी सन्तानों को शिक्षा दी, अपने कुटुम्ब का पालन किया और अपने मुहल्ले के गणमान्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे। वह रुपये का लेन-देन भी करते थे। उन्होंने तीन बैलगाड़ियां भी बनाई थीं, जो किराये पर चला करती थीं। पिताजी को व्यायाम से प्रेम था। उनका शरीर बड़ा सुदृढ़-सुडौल था। वह नियमपूर्वक अखाड़े में कुश्ती लड़ा करते थे।

पिताजी के गृह में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, किन्तु वह मर गया। उसके एक साल बाद (**श्री रामप्रसाद**) ने ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 सम्वत् 1954 विक्रमी को जन्म लिया। बड़े प्रयत्नों से मानता मानकर अनेक गंडे, ताबीज तथा कवचों द्वारा श्री दादाजी ने इस शरीर की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। स्यात् बालकों का रोग गृह में प्रवेश कर गया था। अतएव जन्म लेने के एक या दो मास पश्चात् ही मेरे शरीर की अवस्था भी पहले बालक-जैसी होने लगी। किसी ने बताया कि सफेद खरगोश को मेरे शरीर पर घुमाकर जमीन पर छोड़ दिया जाय, यदि बीमारी होगी तो खरगोश तुरन्त मर जायेगा। कहते हैं हुआ भी ऐसा ही। एक सफेद खरगोश मेरे शरीर पर से उतारकर जैसे ही जमीन पर छोड़ा गया, वैसे

ही उसने तीन-चार चक्कर काटे और मर गया। मेरे विचार में किसी अंश में यह सम्भव भी है, क्योंकि औषधि तीन प्रकार की होती है—(1) दैविक, (2) मानुषिक (3) पैशाचिक। पैशाचिक औषधियों में अनेक प्रकार के पशु या पक्षियों के मांस अथवा रुधिर का व्यवहार होता है, जिनका उपयोग वैद्यक के ग्रन्थों में पाया जाता है। इनमें से एक प्रयोग बड़ा ही कोतूहलोत्पादक तथा आश्चर्यजनक यह है कि जिस बच्चे को जभोखे (सूखा) की बीमारी हो गई हो, यदि उसके सामने चमगादड़ चीरकर लाया जाए तो एक-दो मास का बालक चमगादड़ को पकड़कर उसका खून चूस लेगा और बीमारी जाती रहेगी! यह बड़ी उपयोगी औषधि है और एक महात्मा की बतलाई हुई है।

जब मैं सात वर्ष का हुआ तो पिताजी ने स्वयं ही मुझे हिन्दी अक्षरों का बोध कराया और एक मौलवी साहब के मकबरे में उर्दू पढ़ने के लिए भेज दिया। मुझे भली-भांति स्मरण है कि पिताजी अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाते थे और अपने से बलिष्ठ तथा शरीर में डेढ़ गुने पट्ठे को पटक देते थे। कुछ दिनों बाद पिताजी का एक बंगाली (श्री चटर्जी) महाशय से प्रेम हो गया। चटर्जी महाशय की अंग्रेजी दवा की दुकान थी। वह बड़े ही भारी नशेबाज थे। एक समय में आधा छटांक चरस की चिलम उड़ाया करते थे। उन्हीं की संगति में पिताजी ने भी चरस पीना सीख लिया, जिसके कारण उनका शरीर नितान्त नष्ट हो गया। दस वर्ष में ही सम्पूर्ण शरीर सूखकर हड्डियां निकल आईं। चटर्जी महाशय सुरापान भी करने लगे। अतएव उनका कलेजा बढ़ गया और उसी से उनका शरीरांत हो गया। मेरे बहुत-कुछ समझाने पर पिताजी ने अपनी चरस पीने की आदत को छोड़ा, किन्तु बहुत दिनों के बाद।

मेरे बाद पांच बहनों और तीन भाइयों का जन्म हुआ। दादीजी ने बहुत कहा कि कुल की प्रथा के अनुसार कन्याओं को मार डाला जाए, किन्तु माताजी ने इसका विरोध किया और कन्याओं के प्राणों की रक्षा की। मेरे कुल में यह पहला ही समय था कि कन्याओं का पोषण हुआ। पर इनमें से दो बहनों और दो भाइयों का देहान्त हो गया। शेष एक भाई, जो इस समय (1927 ई०) दस वर्ष का है और तीन बहनें बचीं। माताजी के प्रयत्न से तीनों बहनों को अच्छी शिक्षा दी गई और उनके विवाह बड़ी धूमधाम से किए गए। इसके पूर्व हमारे कुल की कन्याएं किसी को नहीं ब्याही गईं, क्योंकि वे जीवित ही नहीं रखी जाती थी!

दादाजी बड़ी सरल प्रकृति के मनुष्य थे। जब तक वे जीवित रहे, पैसे बेचने का ही व्यवसाय करते रहे। उनको गाय पालने का बहुत बड़ा शौक था। स्वयं ग्वालियर जाकर बड़ी-बड़ी गायें खरीद लाते थे। वहां की गायें काफी दूध देती हैं। अच्छी गाय दस या पन्द्रह सेर दूध देती है। ये गायें बड़ी सीधी भी होती है। दूध दोहन करते समय उनकी टांगें बांधने की आवश्यकता नहीं होती और जब जिसका जी चाहे बिना बच्चे के दूध दोहन कर सकता है। बचपन में मैं बहुधा जाकर गाय के थन में मुंह लगाकर दूध पिया करता था। वास्तव में वहां की गायें दर्शनीय होती हैं।

दादाजी मुझे खूब दूध पिलाया करते थे। उन्हें अट्ठारह गोटी (बधिया बग्घा) खेलने का बड़ा शौक था। सायंकाल के समय नित्य शिव-मन्दिर में जाकर दो घण्टे तक परमात्मा का भजन करते थे। उनका लगभग पचपन वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण हुआ।

बाल्यकाल से ही पिताजी मेरी शिक्षा का अधिक ध्यान रखते थे और जरा-सी भूल करने पर बहुत पीटते थे। मुझे अब भी भली-भांति स्मरण है कि जब मैं नागरी के अक्षर लिखना सीख रहा था तो मुझे 'उ' लिखवाया मैं न लिख सका। उन्हें मालूम हो गया कि मैं खेलने चला गया था इस पर उन्होंने मुझे बन्दूक के लोहे के गज से इतना पीटा कि गज टेढ़ा पड़ गया। मैं भागकर दादाजी के पास चला गया, तब बचा। मैं छोटेपन से ही बहुत उद्दण्ड था। पिताजी के पर्याप्त शासन रखने पर भी बहुत उद्दण्डता करता था। एक समय किसी के बाग में जाकर आड़ू के वृक्षों में से सब आड़ू तोड़ डाले। माली पीछे दौड़ा, किन्तु मैं उसके हाथ न आया। माली ने सब आड़ू पिताजी के सामने ला रखे। उस दिन पिताजी ने मुझे इतना पीटा कि मैं दो दिन तक उठ न सका। इसी प्रकार खूब पिटता था, किन्तु उद्दण्डता अवश्य करता था। शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर तथा सहन-शील बन गया।

मेरी कुमारावस्था

जब में उर्दू का चौथा दर्जा पास करके पांचवें में आया उस समय मेरी अवस्था लगभग चौदह वर्ष की होगी। इसी बीच मुझे पिताजी के सन्दूक से रुपये-पैसे चुराने की आदत पड़ गई थी। इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता। पुस्तक-विक्रेता महाशय पिताजी के जान-पहचान के थे। उन्होंने पिताजी से मेरी शिकायत की। अब मेरी कुछ

जांच होने लगी। मैंने उन महाशय के यहां से किताबें खरीदना ही छोड़ दिया। मुझमें दो-एक खराब आदतें भी पड़ गईं। मैं सिगरेट पीने लगा। कभी-कभी भंग भी जमा लेता था। कुमारावस्था में स्वतन्त्रतापूर्वक-पैसे हाथ आ जाने से और उर्दू के प्रेम-रसपूर्ण उपन्यासों तथा गजलों की पुस्तकों ने आचरण पर भी अपना कुप्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया। घुन लगना आरम्भ हुआ ही था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की। मैं एक रोज भंग पीकर पिताजी की संदूकची में से रुपए निकालने गया। नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गई। माताजी को सन्देह हुआ। उन्होंने मुझे पकड़ लिया। चाभी पकड़ी गई। मेरे सन्दूक की तलाशी ली गई, बहुत से रुपए निकले और सारा भेद खुल गया। मेरी किताबों में अनेक उपन्यासादि पाए गए जो उसी समय फाड़ डाले गए।

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गई, नहीं तो दो-चार वर्ष में न दीन का रहता न दुनिया का। इसके बाद भी मैंने बहुत घातें लगाई, किन्तु पिताजी ने संदूकची का ताला बदल दिया था। मेरी कोई चाल न चल सकी। अब जब कभी मौका मिल जाता तो माताजी के रुपयों पर हाथ फेर देता था। इसी प्रकार की कुटेवों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना न चाहते थे और किसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे, किन्तु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया। दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ उसी समय पड़ोस के देव-मन्दिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली थी, एक पुजारीजी आ गए। वह बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे। मैं उनके पास उठने-बैठने लगा।

मैं मन्दिर में आने-जाने लगा। कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा। पुजारी जी के उपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ। मैं अपना अधिकतर समय स्तुतिपूजन तथा पढ़ने में व्यतीत करने लगा। पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का खूब उपदेश देते थे। वह मेरे पथ-प्रदर्शक बने। मैंने एक-दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरम्भ कर दिया। अब तो मुझे भक्ति-मार्ग में कुछ आनन्द प्राप्त होने लगा और चार-पांच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा। मेरी सब बुरी आदतें तथा कुभावनाएं जाती रहीं। स्कूलों की छुट्टियां समाप्त होने पर मैंने मिशन

स्कूल के अंग्रेजी के पांचवें दर्जे में नाम लिखा लिया। इस समय तक मेरी और सब कुटेवें तो छूट गई थीं, किन्तु सिगरेट पीना न छूटता था। मैं सिगरेट बहुत पीता था। एक दिन में पचास-साठ सिगरेट पी डालता था। मुझे बड़ा दुःख होता था कि मैं इस जीवन में सिगरेट पीने की कुटेव को न छोड़ सकूंगा। स्कूल में भरती होने के थोड़े दिनों बाद ही एक सहपाठी श्रीयुत सुशीलचन्द्र सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया। उन्हीं की दया के कारण मेरा सिगरेट पीना भी छूट गया।

देव-मन्दिर में स्तुति-पूजा की प्रवृत्ति को देखकर श्रीयुत मुंशी इन्द्रजीत जी ने मुझे सन्ध्या करने का उपदेश दिया। मुंशीजी उस मन्दिर में रहने वाले किसी महाशय के पास आया करते थे। व्यायामादि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मैंने जानना चाहा कि सन्ध्या क्या वस्तु है मुंशीजी ने आर्य-समाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिए। इसके बाद मैंने **सत्यार्थप्रकाश** पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। **सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया**। मैंने उसमें उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं एक कम्बल को तख्त पर बिछाकर सोता और प्रात:काल चार बजे से ही शैया-त्याग कर देता। स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर व्यायाम करता, किन्तु मन की वृत्तियां ठीक न होतीं। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया। केवल थोड़ा-सा दूध ही रात को पीने लगा। सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ दिया था, इस कारण कभी-कभी स्वप्न-दोष हो जाता। तब किसी सज्जन के कहने से मैंने नमक खाना भी छोड़ दिया। केवल उबालकर साग या दाल से एक समय भोजन करता। मिर्च-खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के दोष दूर हो गए और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते थे।

मैं थोड़े दिनों में ही बड़ा कट्टर आर्यसमाजी हो गया। आर्यसमाज के अधिवेशन में जाता-आता। संन्यासी-महात्माओं के उपदेशों को बड़ी श्रद्धा से सुनता। जब कोई संन्यासी आर्यसमाज में आता तो उसकी हर प्रकार से सेवा करता, क्योंकि मेरी प्राणायाम सीखने की बड़ी उत्कट इच्छा थी। जिन संन्यासी का नाम सुनता शहर से तीन-चार मील उसकी सेवा के लिए जाता, फिर वह संन्यासी चाहे जिस मत का अनुयायी

होता। जब मैं अंग्रेजी के सातवें दर्जे में था तब सनातनधर्मी पण्डित जगतप्रसादजी शाहजहांपुर पधारे। उन्होंने आर्यसमाज का खण्डन करना प्रारम्भ किया। आर्यसमाजियों ने भी उनका विरोध किया और पं० अखिलानंदजी को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ। मेरे कामों को देखकर मुहल्ले वालों ने पिताजी से मेरी शिकायत की। पिताजी ने मुझसे कहा कि आर्यसमाजी हार गए, अब तुम आर्य-समाज से अपना नाम कटा दो। मैंने पिताजी से कहा कि आर्यसमाज के सिद्धान्त सार्वभौम हैं, उन्हें कौन हरा सकता है ? अनेक वाद-विवाद के पश्चात् पिताजी जिद्द पकड़ गए कि आर्यसमाज को त्यागपत्र न देगा तो मैं तुझे रात को सोते समय मार दूंगा; या तो आर्यसमाज से त्यागपत्र दे दे, या घर छोड़ दे। मैंने भी विचारा कि पिताजी का क्रोध यदि अधिक बढ़ गया और उन्होंने मुझ पर कोई वस्तु ऐसी दे पटकी कि जिससे बुरा परिणाम हुआ तो अच्छा न होगा। अतएव घर त्याग देना ही उचित है। मैं केवल एक कमीज पहने खड़ा था और पाजामा उतार कर धोती पहन रहा था। पाजामे के नीचे लंगोट बंधा था। पिताजी ने हाथ से धोती छीन ली और कहा, 'घर से निकल।' मुझे भी क्रोध आ गया। मैं पिताजी के पैर छूकर गृह त्यागकर चला गया। कहां जाऊं कुछ समझ में न आया। शहर में किसी से जान-पहचान न थी कि जहां छिपा रहता। मैं जंगल की ओर चला गया। एक रात और एक दिन बाग में पेड़ पर बैठा रहा। भूख लगने पर खेतों में से हरे चने तोड़ कर खाए, नदी में स्नान किया और जलपान किया। दूसरे दिन सन्ध्या समय पं० अखिलानन्दजी का व्याख्यान आर्यसमाज मन्दिर में था। मैं आर्यसमाज मन्दिर में गया। एक पेड़ के नीचे एकान्त में खड़ा व्याख्यान सुन रहा था कि पिताजी दो मनुष्यों को लिए हुए आ पहुंचे और मैं पकड़ लिया गया। वह उसी समय पकड़कर स्कूल के हैडमास्टर के पास ले गए। हैडमास्टर साहब ईसाई थे। मैंने उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। उन्होंने पिताजी को ही समझाया कि समझदार लड़के को मारना-पीटना ठीक नहीं। मुझे भी बहुत-कुछ उपदेश दिया। उस दिन से पिताजी ने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया, क्योंकि मेरे घर से निकल जाने पर घर में बड़ा क्षोभ रहा। एक रात एक दिन किसी ने भोजन नहीं किया, सब बड़े दुखी हुए कि अकेला पुत्र न जाने नदी में डूब गया या रेल से कट गया! पिताजी के हृदय को भी बड़ा भारी धक्का पहुंचा। उस दिन से वह मेरी प्रत्येक बात

सहन कर लेते थे, अधिक विरोध न करते थे। मैं पढ़ने में बड़ा प्रयत्न करता था और अपने दर्जे में प्रथम उत्तीर्ण होता था। यह अवस्था आठवें दर्जे तक रही। जब मैं आठवें दर्जे में था, उसी समय **स्वामी श्री सोमदेव जी सरस्वती** आर्य-समाज, शाहजहांपुर में पधारे। उनके व्याख्यानों का जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव हुआ। कुछ सज्जनों के अनुरोध से स्वामीजी की कुछ दिनों के लिए शाहजहांपुर आर्यसमाज मन्दिर में ठहर गए। स्वामीजी तबियत भी कुछ खराब थी, इस कारण शाहजहांपुर का जलवायु लाभदायक देखकर वहां ठहरे थे। मैं उनके पास जाया-आया करता था। प्राणपण से मैंने स्वामीजी महाराज की सेवा की और इसी सेवा के परिणामस्वरूप मेरे जीवन में नवीन परिवर्तन हो गया। मैं रात को दो-तीन बजे तक और दिन-भर उनकी सेवा-सुश्रूषा में उपस्थित रहता। अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया। कतिपय सज्जनों ने बड़ी सहानुभूति दिखलाई, किन्तु रोग का शमन न हो सका। स्वामीजी मुझे अनेक प्रकार के उपदेश दिया करते थे। उन उपदेशों को मैं श्रवण कर कार्य-रूप में परिणत करने का पूरा प्रयत्न करता। वास्तव में वह मेरे गुरुदेव तथा पथ-प्रदर्शक थे। उनकी शिक्षाओं ने ही मेरे जीवन में आत्मिक-बल का संचार किया जिनके सम्बन्ध में मैं पृथक् वर्णन करूंगा।

कुछ नवयुवकों ने मिलकर आर्यसमाज मन्दिर में '**आर्य कुमार सभा**' खोली थी, जिनके साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करते थे। वहीं पर धार्मिक पुस्तकों का पठन, विषय विशेष पर निबन्ध-लेखन और पठन तथा वाद-विवाद होता था। कुमार-सभा से ही मैंने जनता के सम्मुख बोलने का अभ्यास किया। बहुधा कुमार-सभा के नवयुवक मिलकर शहर के मेलों में प्रचारार्थ जाया करते थे। बाजारों में व्याख्यान देकर आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। ऐसा करते-करते मुसलमानों से मुबाहसा होने लगा। अतएव पुलिस ने झगड़े का भय देखकर बाजारों में व्याख्यान देना बन्द करा दिया। आर्यसमाज के सदस्यों ने कुमार-सभा के प्रयत्न को देखकर उस पर अपना शासन जमाना चाहा, किन्तु कुमार किसी का अनुचित शासन कब मानने वाले थे! आर्यसमाज के मन्दिर में ताला डाल दिया गया कि कुमार-सभा वाले आर्यसमाज मन्दिर में अधिवेशन न करें। यह भी कहा गया कि यदि वे वहां अधिवेशन करेंगे, तो पुलिस को बुलाकर उन्हें मन्दिर से निकलवा

दिया जायेगा। कई महीनों तक हम लोग मैदान में अपनी सभा के अधिवेशन करते रहे, किन्तु बालक ही तो थे, कब तक इस प्रकार कार्य चला सकते थे ? कुमार-सभा टूट गई। तब आर्यसमाजियों को शान्ति हुई। कुमार-सभा ने अपने शहर में तो नाम पाया ही था। जब लखनऊ में कांग्रेस हुई तो भारतवर्षीय कुमार सम्मेलन का भी वार्षिक अधिवेशन वहां हुआ। उस अवसर पर सबसे अधिक पारितोषक लाहौर और शाहजहांपुर की कुमार-सभाओं ने पाये थे, जिनकी प्रशंसा समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों मिशन स्कूल के एक विद्यार्थी से मेरा परिचय हुआ। वह कभी-कभी कुमार-सभा में आ जाया करते थे। मेरे भाषण का उन पर अधिक प्रभाव हुआ। वैसे तो वह मेरे मकान के निकट ही रहते थे, किन्तु आपस में कोई मेल न था। बैठने-उठने से आपस में प्रेम बढ़ गया। वह एक ग्राम के निवासी थे। जिस ग्राम में उनका घर था वह ग्राम बड़ा प्रसिद्ध है। वहां का प्रत्येक निवासी अपने घर में बिना लाइसेन्स अस्त्र-शस्त्र रखता है। बहुत से लोगों के यहां बन्दूक तथा तमंचे भी रहते हैं, जो ग्राम में ही बन जाते हैं। ये सब टोपीदार होते हैं। उन महाशय के पास भी एक नाली का छोटा-सा पिस्तौल था जिसे वह अपने साथ शहर में रखते थे। जब मुझसे अधिक प्रेम बढ़ा तो उन्होंने वह पिस्तौल मुझे रखने के लिए दिया। इस प्रकार के हथियार रखने की मेरी उत्कट इच्छा थी, क्योंकि मेरे पिता के कई शत्रु थे, जिन्होंने पिता जी पर अकारण ही लाठियों का प्रहार किया था। मैं चाहता था कि यदि पिस्तौल मिल जाए तो मैं पिताजी के शत्रुओं को मार डालूं। यह एक नाली का पिस्तौल वह महाशय अपने पास रखते तो थे, किन्तु उसको चलाकर न देखा था। मैंने उसे चलाकर देखा तो वह नितान्त बेकार सिद्ध हुआ। मैंने उसे ले जाकर एक कोने में डाल दिया। उस महाशय से स्नेह इतना बढ़ गया कि सायंकाल को मैं अपने घर में खीर की थाली ले जाकर उनके साथ-साथ उनके मकान पर ही भोजन किया करता था। वह मेरे साथ श्री स्वामी सोमदेवजी के पास भी जाया करते थे। उनके पिता जब शहर आए तो उनको यह बड़ा बुरा मालूम हुआ। उन्होंने मुझसे अपने लड़के के पास न आने या उसे कहीं साथ न ले जाने के लिए बहुत ताड़ना की और कहा कि यदि मैं उनका कहना न मानूंगा तो वह ग्राम से आदमी लाकर मुझे पिटवाएंगे। मैंने उनके पास जाना-आना त्याग दिया, किन्तु वह महाशय मेरे यहां आते-जाते रहे।

लगभग अट्ठारह वर्ष की उम्र तक मैं रेल पर न चढ़ा था। मैं इतना दृढ़ सत्यवक्ता हो गया था कि एक समय रेल पर चढ़कर तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा था, पर इण्टर क्लास में बैठकर दूसरों के साथ-साथ चला गया। इस बात से मुझे बड़ा खेद हुआ। मैंने अपने साथियों से अनुरोध किया कि यह तो एक प्रकार की चोरी है। सबको मिलकर इण्टर क्लास का भाड़ा स्टेशन मास्टर को दे देना चाहिए। एक समय मेरे पिताजी दीवानी में किसी पर दावा करके वकील से कह गए थे कि जो काम हो वह मुझसे करा लें। कुछ आवश्यकता पड़ने पर वकील साहब ने मुझे बुला भेजा और कहा कि मैं पिताजी के हस्ताक्षर वकालतनामे पर कर दूं। मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि यह तो धर्मविरुद्ध होगा, इस प्रकार का पाप मैं कदापि नहीं कर सकता। वकील साहब ने बहुत-कुछ समझाया कि एक सौ रुपये से अधिक का दावा है, मुकदमा खारिज हो जायेगा। किन्तु मुझ पर कुछ भी प्रभाव न हुआ, न मैंने हस्ताक्षर किए। अपने जीवन में सर्वप्रकारेण सत्य का आचरण करता था, चाहे कुछ हो जाए, सत्य बात कह देता था।

मेरी माता मेरे धर्म-कार्यों में तथा शिक्षादि में बड़ी सहायता करती थीं। वह प्रातःकाल चार बजे ही मुझे जगा दिया करती थीं। **मैं नित्य-प्रति नियमपूर्वक हवन किया करता था।** मेरी छोटी बहन का विवाह करने के निमित्त माताजी और पिताजी ग्वालियर गए। मैं और श्री दादीजी शाहजहांपुर में ही रह गए, क्योंकि मेरी वार्षिक परीक्षा थी। परीक्षा समाप्त करके मैं भी बहन के विवाह में सम्मिलित होने को गया। बारात आ चुकी थी। मुझे ग्राम के बाहर ही मालूम हो गया कि बारात में वेश्या आई है। मैं घर न गया और न बारात में सम्मिलित हुआ। मैंने विवाह में कोई भी भाग न लिया। मैंने माताजी से थोड़े से रुपए मांगे। माताजी ने मुझे लगभग 125 रुपये दिए, जिनको लेकर मैं ग्वालियर गया। यह अवसर रिवाल्वर खरीदने का अच्छा हाथ लगा। मैंने सुन रखा था कि रियासत में बड़ी आसानी से हथियार मिल जाते हैं। बड़ी खोज की। टोपीदार बन्दूक तथा पिस्तौल तो मिलते थे, किन्तु कारतूसी हथियारों का कहीं पता नहीं लगा। पता लगा भी तो एक महाशय ने मुझे ठग लिया और 75 रुपये में टोपीदार पांच फायर करने वाला एक रिवाल्वर दिया। रियासत की बनी हुई बारूद और थोड़ी-सी टोपियां दे दीं। मैं इसी को लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सीधा शाहजहांपुर पहुंचा। रिवाल्वर को भरकर

चलाया तो गोली केवल पन्द्रह या बीस गज पर ही गिरी, क्योंकि बारूद अच्छी न थी। मुझे बड़ा खेद हुआ। माताजी जब लौटकर शाहजहांपुर आईं तो उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या लाये ? मैंने कुछ कह कर टाल दिया। रुपये सब खर्च हो गए। शायद एक गिन्नी बची थी, सो मैंने माताजी को लौटा दी। मुझे जब किसी बात के लिए धन की आवश्यकता होती तो मैं माताजी से कहता और वह मेरी मांग पूरी कर देती थीं। मेरा स्कूल घर से एक मील दूर था। मैंने माताजी से प्रार्थना की कि मुझे साइकिल ले दें। उन्होंने लगभग एक सौ रुपए दिए। मैंने साइकिल खरीद ली। उस समय अंग्रेजी के नवें दर्जे में आ गया था। किसी धार्मिक या देश सम्बन्धी पुस्तक पढ़ने की इच्छा होती माता जी से ही दाम ले जाता। लखनऊ कांग्रेस जाने के लिए मेरी बड़ी इच्छा थी। दादीजी और पिताजी तो बहुत विरोध करते रहे, किन्तु माताजी ने मुझे खर्च दे ही दिया। उसी समय शाहजहांपुर में सेवा-समिति का आरम्भ हुआ था। मैं बड़े उत्साह के साथ सेवा-समिति में सहयोग देता था। पिताजी और दादीजी को मेरे इस प्रकार के कार्य अच्छे न लगते थे, किन्तु माताजी मेरा उत्साह भंग न होने देती थीं, जिसके कारण उन्हें बहुधा पिताजी की डांट-फटकार तथा दण्ड भी सहन करना पड़ता था। वास्तव में, मेरी माताजी स्वर्गीय देवी हैं। मुझमें जो कुछ जीवन तथा साहस आया, वह मेरी माताजी तथा गुरुदेव श्री सोमदेव जी की कृपाओं का ही परिणाम है दादीजी तथा पिताजी मेरे विवाह के लिए बहुत अनुरोध करते, किन्तु माताजी यही कहतीं कि शिक्षा पा चुकने के बाद ही विवाह करना उचित होगा। माताजी के प्रोत्साहन तथा सद्व्यवहार ने मेरे जीवन में वह दृढ़ता उत्पन्न की कि किसी आपत्ति तथा संकट के आने पर भी मैंने अपने संकल्प को न त्यागा।

मेरी मां

ग्याहर वर्ष की उम्र में माताजी विवाह कर शाहजहांपुर आई थीं। उस समय वह नितान्त अशिक्षित एक ग्रामीण कन्या के सदृश थीं। शाहजहांपुर आने के थोड़े दिनों बाद श्री दादीजी ने अपनी छोटी बहन को बुला लिया। उन्होंने माताजी को गृह-कार्य की शिक्षा दी। थोड़े दिनों में माताजी ने घर के सब काम-काज को समझ लिया ओर भोजनादि का ठीक-ठीक प्रबन्ध करने लगीं। मेरे जन्म होने के पांच या सात वर्ष बाद उन्होंने हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ने का शौक उन्हें खुद ही पैदा

हुआ था। मुहल्ले की सखी–सहेली जो घर पर आया करती थीं, उन्हीं में जो कोई शिक्षित थीं, माताजी उनसे अक्षर बोध करतीं। इस प्रकार, घर का सब काम कर चुकने के बाद जो कुछ समय मिल जाता, उसमें नागरी पुस्तकों का अवलोकन करने लगीं। मेरी बहनों को छोटी आयु में, माताजी ही शिक्षा दिया करती थीं। जब से मैंने आर्यसमाज में प्रवेश किया, तब से माताजी से खूब वार्तालाप होता। उस समय की अपेक्षा अब उनके विचार भी कुछ उदार हो गए हैं। यदि मुझे ऐसी माता न मिलतीं, तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भांति संसार–चक्र में फंसकर जीवन निर्वाह करता। शिक्षादि के अतिरिक्त क्रान्तिकारी जीवन में भी उन्होंने मेरी वैसी ही सहायता की है, जैसे मेजिनी को उनकी माता ने की थी। यथासमय मैं उन सारी बातों का उल्लेख करूंगा। माताजी का सबसे बड़ा आदेश मेरे लिए यही था कि किसी की प्राण–हानि न हो। उनका कहना था कि अपने शत्रु को भी कभी प्राण–दण्ड न देना। उनके इस आदेश की पूर्ति करने के लिए मुझे मजबूरन दो–एक बार अपनी प्रतिज्ञा भंग भी करनी पड़ी थी।

जन्मदात्री जननी! इस जीवन में तो तुम्हारा ऋण–परिशोध करने के प्रयत्न करने का भी अवसर न मिला। इस जन्म में तो क्या यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन प्रयत्न करूं तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। जिस प्रेम तथा दृढ़ता के साथ तुमने इस तुच्छ जीवन का सुधार किया है, वह अवर्णनीय है। मुझे जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है कि तुमने किस प्रकार अपनी देव–वाणी का उपदेश करके मेरा सुधार किया है। तुम्हारी दया से ही मैं देश–सेवा में संलग्न हो सका। धार्मिक जीवन में भी तुम्हारे ही प्रोत्साहन ने सहायता दी। जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की उसका भी श्रेय तुम्हीं को है। जिस मनोहर रूप से तुम मुझे उपदेश करती थीं, उसका स्मरण कर तुम्हारी मंगलमयी मूर्ति का ध्यान आ जाता है और मस्तक नत हो जाता है। तुम्हें यदि मुझे ताड़ना भी देनी हुई, तो बड़े स्नेह से हर एक बात को समझा दिया। यदि मैंने धृष्टतापूर्ण उत्तर दिया तब तुमने प्रेम भरे शब्दों में यही कहा कि तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं, इसका परिणाम अच्छा न होगा। जीवनदात्री! तुमने इस शरीर को जन्म देकर केवल पालन–पोषण ही नहीं किया किन्तु आत्मिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति में तुम्हीं मेरी सदैव सहायक रहीं। जन्म–जन्मान्तर में परमात्मा ऐसी ही माता दें।

महान्-से-महान् संकट में भी तुमने मुझे अधीर नहीं होने दिया। सदैव अपनी प्रेमभरी वाणी को सुनाते हुए मुझे सान्त्वना देती रहीं। तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवन-भर में कोई कष्ट अनुभव न किया। इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक तृष्णा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती दिखाई नहीं देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःख-सम्वाद सुनाया जायेगा। माँ! मुझे विश्वास है कि तुम यह समझ कर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता 'भारत माता' की सेवा में अपने जीवन को बलि-वेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कुक्षि को कलंकित न किया, अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जायेगा, तो उसके किसी पृष्ठ पर उज्ज्वल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जायेगा। गुरु गोविन्दसिंहजी की धर्मपत्नी ने जब अपने पुत्रों की मृत्यु का सम्वाद सुना था, तो बहुत हर्षित हुई थीं और गुरु के नाम पर धर्म-रक्षार्थ अपने पुत्रों के बलिदान पर मिठाई बांटी थी। जन्मदात्री ! वर दो कि अन्तिम समय भी मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरण कमलों को प्रणाम कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करूं।

मेरे गुरुदेव

माताजी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री 108 स्वामी सोमदेव जी की कृपा का परिणाम है। आपका नाम श्रीयुत ब्रजलाल चोपड़ा था। पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ था। आपका कुटुम्ब प्रसिद्ध था, क्योंकि आपके दादा महाराजा रणजीतसिंह के मन्त्रियों में से एक थे। आपके जन्म के कुछ समय पश्चात् आपकी माता का देहान्त हो गया था। आपकी दादी ने ही आपका पालन-पोषण किया था। आप अपने पिता की अकेली सन्तान थे। जब आप बढ़े तो चाचियों ने दो-तीन बार आपको जहर देकर मार देने का प्रयत्न किया, ताकि उनके लड़कों को ही जायदाद का अधिकार मिल जाय। आपके चाचा आप पर बड़ा स्नेह रखते थे और शिक्षादि की ओर विशेष ध्यान रखते थे। अपने चचेरे भाइयों के साथ-साथ आप भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे। जब आपने एण्ट्रेन्स की परीक्षा दी तो परीक्षा-फल प्रकाशित होने पर आप यूनिवर्सिटी में प्रथम आये और चाचा के

लड़के फेल हो गये। घर में बड़ा शोक मनाया गया। दिखाने के लिए भोजन तक नहीं बना। आपकी प्रशंसा तो दूर, किसी ने उस दिन भोजन करने को भी न पूछा और बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा। आपका हृदय पहले से ही घायल था, इस घटना से आपके जीवन को और भी बड़ा आघात पहुंचा। चाचाजी के कहने-सुनने पर कॉलिज में नाम लिखा तो लिया, किन्तु बड़े उदासीन रहने लगे। आपके हृदय में दया बहुत थी। बहुधा अपनी किताबें तथा कपड़े दूसरे सहपाठियों को बांट दिया करते थे। नये कपड़े बांटकर पुराने कपड़े स्वयं पहना करते थे। एक-दो बार चाचाजी से दूसरे लोगों ने कहा कि ब्रजलाल को कपड़े भी आप नहीं बनवा देते, जो वह पुराने फटे-कपड़े पहने फिरते हैं! चाचाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने कई जोड़े कपड़े थोड़े दिनों पहले ही बनवाये थे। आपके सन्दूकों की तलाशी ली गई। उनमें दो-चार जोड़ी पुराने कपड़े निकले, तब चाचाजी ने पूछा तो मालूम हुआ कि वे नये कपड़े निर्धन विद्यार्थियों को बांट दिया करते हैं। चाचाजी ने कहा कि जब कपड़े बांटने की इच्छा हो कह दिया करो। आप बहुधा निर्धन विद्यार्थियों को अपने घर पर ही भोजन कराया करते थे। चाचियों तथा चचाजात भाइयों के व्यवहार से आपको बड़ा क्लेश होता था। इसी कारण से आपने विवाह न किया। घरेलू दुर्व्यवहार से दुखित होकर आपने घर त्याग देने का निश्चय कर लिया और एक रात को जब सब सो रहे थे, चुपचाप उठकर घर से निकल गये। कुछ भी सामान साथ न लिया। बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। भटकते-भटकते आप हरिद्वार पहुंचे। वहां एक सिद्ध योगी से भेंट हुई। श्री ब्रजलालजी को जिस वस्तु की इच्छा थी, वह प्राप्त हो गई। उसी स्थान पर रहकर श्री ब्रजलालजी ने योग-विद्या की पूर्ण शिक्षा पाई। योगीराज की कृपा से आप 18-20 घण्टे की समाधि लगा लेने लगे। कई वर्ष तक आप वहां रहे। **इस समय आपको योग का इतना अभ्यास हो गया था कि अपने शरीर को आप इतना हल्का कर लेते थे कि पानी पर पृथ्वी समान चले जाते थे।** अब आपको देश-भ्रमण तथा अध्ययन करने की इच्छा हुई। अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए अध्ययन करते रहे। जर्मनी तथा अमेरिका से बहुत पुस्तकें मंगाईं, जो शास्त्रों के सम्बन्ध में थीं। जब लाला लाजपतराय को देश-निर्वासन का दण्ड मिला था, उस समय आप लाहौर में थे। वहां आपने एक समाचार-पत्र की सम्पादकी के लिए

डिक्लेरेशन दाखिल किया। डिप्टी कमिश्नर उस समय किसी के भी समाचार-पत्र के डिक्लेरेशन को स्वीकार न करता था। जब आपसे भेंट हुई, तो वह बड़ा प्रभावित हुआ और उसने डिक्लेरेशन मंजूर कर लिया। अखबार का पहला ही अग्रलेख **'अंग्रजों को चेतावनी'** के नाम से निकाला। लेख इतना उत्तेजनापूर्ण था कि थोड़ी देर में ही समाचार-पत्र की सब प्रतियां बिक गईं और जनता के अनुरोध पर उसी अंक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। डिप्टी कमिश्नर के पास रिर्पोट हुई। उसने आपको दर्शनार्थ बुलाया। वह बड़ा क्रुद्ध था। लेख को पढ़कर कांपता, और क्रोध में आकर मेज पर हाथ दे मारता था। किन्तु अन्तिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता। उस लेख के कुछ शब्द यों थे कि 'यदि अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन् 1857 के दृश्य फिर दिखाई दें और अंग्रेजों के बच्चों को कत्ल किया जाय, उनकी रमणियों की बेइज्जती हो, इत्यादि। किन्तु "यह सब स्वप्न है", 'यह सब स्वप्न है' इन्हीं शब्दों को पढ़ कर डिप्टी कमिश्नर कहता कि हम तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

स्वामी सोमदेव भ्रमण करते हुए बम्बई पहुंचे। वहां पर आपके उपदेशों को सुनकर जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक व्यक्ति, जो श्रीयुत अबुल कलाम आजाद के बड़े भाई थे, आपका व्याख्यान सुनकर मोहित हो गये। वह आपको अपने घर ले गये। इस समय तक आप गेरुआ कपड़ा न पहनते थे। केवल एक लुंगी और कुरता पहनते थे, और साफा बांधते थे। श्रीयुत अबुल कलाम आजाद के पूर्वज अरब के निवासी थे। आपके पिता के बम्बई में बहुत से मुरीद थे और कथा की तरह कुछ धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने पर हजारों रुपये चढ़ावे में आया करते थे वह सज्जन इतने मोहित हो गये कि उन्होंने धार्मिक कथाओं का पाठ करने के लिए जाना ही छोड़ दिया! वह दिन-रात आपके पास ही बैठे रहते। जब आप उनसे कहीं जाने को कहते तो वह रोने लगते ओर कहते कि मैं तो आपके आत्मिक ज्ञान के उपदेशों पर मोहित हूं। मुझे संसार में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। आपने एक दिन नाराज होकर उनके धीरे से चपत मार दी जिससे वे दिन-भर रोते रहे। उनको घर वालों तथा शिष्यों ने बहुत समझाया किन्तु वह धार्मिक कथा कहने न जाते। यह देखकर उनके मुरीदों को बड़ा क्रोध आया कि हमारे धर्मगुरु एक काफिर के चक्कर में फंस गए हैं। एक सन्ध्या को स्वामीजी अकेले समुद्र के तट पर भ्रमण

करने गये थे कि कई मुरीद मकान पर बन्दूक लेकर स्वामीजी को मार डालने के लिए आये। यह समाचार जानकर उन्होंने स्वामीजी के प्राणों का भय देख कर स्वामीजी से बम्बई छोड़ देने की प्रार्थना की। प्रातःकाल एक स्टेशन पर स्वामीजी को तार मिला कि आपके श्रीयुत अबुल कलाम आजाद के भाई साहब ने आत्महत्या कर ली! तार पाकर आपको बड़ा क्लेश हुआ। जिस समय आपको इन बातों का स्मरण हो आता था तो बड़े दुःखी होते थे। मैं एक सन्ध्या के समय आपके निकट बैठा था, अंधेरा काफी हो गया था। स्वामीजी ने बड़ी गहरी ठंडी सांस ली। मैंने चेहरे की ओर देखा तो आंखों से आंसू बह रहे थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कई घण्टों प्रार्थना की, तब आपने उपरोक्त विवरण सुनाया।

अंग्रेजी की योग्यता आपकी बड़ी उच्चकोटि की थी। आपका शास्त्र विषयक ज्ञान बड़ा गम्भीर था। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। आपकी योग्यता को देखकर एक बार मद्रास की कांग्रेस कमेटी ने आपको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का प्रतिनिधि चुनकर भेजा था। आगरा को आर्यमित्र–सभा के वार्षिकोत्सव पर आपके व्याख्यानों को श्रवण कर राजा महेन्द्रप्रतापजी बड़े मुग्ध हुए थे। राजा साहब ने आपके पैर छुए और आपको अपनी कोठी पर लिवा ले गए। उस समय राजा साहब बहुधा आपके उपदेश सुना करते और आपको अपना गुरु मानते थे। इतना साफ निर्भीक बोलने वाला मैंने आज तक नहीं देखा। सन् 1913 ई० में मैंने आपका पहला व्याख्यान शाहजहांपुर में सुना था। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आप पधारे थे। उस समय आप बरेली में निवास करते थे। आपका शरीर बहुत कृश था, क्योंकि आपको एक अजीब रोग हो गया था। आप जब शौच जाते थे, तब आपके खून गिरता था। कभी दो छटांक, कभी चार छटांक और कभी–कभी तो एक सेर तक खून गिर जाता था। बवासीर आपको नहीं थी। ऐसा कहते थे कि किसी प्रकार योग की क्रिया बिगड़ जाने से पेट की आंत में कुछ विकार उत्पन्न हो गया। आंत सड़ गई। पेट चिरवाकर आंत कटवानी पड़ी और तभी से यह रोग हो गया था। बड़े–बड़े वैद्य–डाक्टरों की औषधि की किन्तु कुछ लाभ न हुआ। इतने कमजोर होने पर भी जब व्याख्यान देते तब इतने जोर से बोलते कि तीन–चार फर्लांग से आपका व्याख्यान साफ सुनाई देता था। दो–तीन वर्ष तक आपको हर साल आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर बुलाया जाता। सन् 1915 ई० में कतिपय सज्जनों की

प्रार्थना पर आप आर्यसमाज मन्दिर शाहजहांपुर में ही निवास करने लगे। इसी समय से मैंने आपकी सेवा-सुश्रुषा में समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया।

स्वामीजी मुझे धार्मिक तथा राजनीतिक उपदेश देते थे और इस प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का भी आदेश करते थे। राजनीति में भी आपका ज्ञान उच्चकोटि का था लाला हरदयाल का आपसे बहुत परामर्श होता था। एक बार महात्मा मुंशीरामजी (स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी) को आपने पुलिस के प्रकोप से बचाया। आचार्य रामदेव तथा श्रीयुत कृष्णजी से आपका बड़ा स्नेह था। राजनीति में आप मुझसे अधिक खुलते न थे। आप मुझसे बहुधा कहा करते थे कि एण्ट्रेन्स पास कर लेने के बाद यूरोप-यात्रा अवश्य करना। इटली जाकर महात्मा मेजिन की जन्म भूमि के दर्शन अवश्य करना। सन् 1916 ई० में लाहौर षड्यन्त्र का मामला चला। मैं समाचार-पत्रों में उसका सब वृत्तान्त बड़े चाव से पढ़ा करता था। श्रीयुत भाई परमानन्दजी में मेरी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उनकी लिखी हुई **'तवारीख हिन्द'** पढ़कर मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। लाहौर षड्यन्त्र का फैसला अखबारों में छपा। भाई परमानन्दजी को फाँसी की सजा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने विचारा कि अंग्रेज बड़े अत्याचारी हैं, इनके राज्य में न्याय नहीं, जो इतने बड़े महानुभाव को फाँसी की सजा का हुक्म दे दिया। मैंने प्रतिज्ञा की कि इस का बदला अवश्य लूंगा। जीवन-भर अंग्रेजी राज्य को विध्वंस करने का प्रयत्न करता रहूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् मैं स्वामीजी के पास आया। सब समाचार सुनाए और अखबार दिया। अखबार पढ़कर स्वामीजी जी बड़े दुखित हुए। तब मैंने अपनी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में कहा। स्वामीजी कहने लगे कि प्रतिज्ञा करना सरल है, किन्तु उस पर दृढ़ रहना कठिन है। मैंने स्वामीजी को प्रणाम कर उत्तर दिया कि यदि श्रीचरणों की कृपा बनी रहेगी तो प्रतिज्ञा-पूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न करूंगा। उस दिन में स्वामीजी कुछ-कुछ खुले। आप बहुत-सी बातें बताया करते थे। उसी दिन से मेरे क्रान्तिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ। यद्यपि आप आर्य-समाज के सिद्धान्तों को सर्वप्रकारेण मानते थे किन्तु परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन प्रायः किया करते थे।

धार्मिक तथा आत्मिक जीवन में जो दृढ़ता मुझ में उत्पन्न हुई, वह स्वामीजी महाराज के सदुपदेशों का ही परिणाम है। आपकी दया से ही

में ब्रह्मचर्य-पालन में सफल हुआ। आपने मेरे भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में जो-जो बातें कही थीं, वे अक्षरशः सत्य हुईं। आप कहा करते थे कि दुःख है कि यह शरीर न रहेगा ओर तेरे जीवन में बड़ी विचित्र-विचित्र समस्याएं आएंगी, जिनको सुलझाने वाला कोई न मिलेगा। यदि यह शरीर नष्ट न हुआ, जो असम्भव है, तो तेरा जीवन भी संसार में एक आदर्श जीवन होगा। मेरा दुर्भाग्य था कि आपके अन्तिम दिन बहुत निकट आ गए, तब आपने मुझे योगाभ्यास सम्बन्धी कुछ क्रियाएं बताने की इच्छा प्रकट की, किन्तु आप इतने दुर्बल हो गए थे कि जरा-सा परिश्रम करने या दस-बीस कदम चलने पर ही आपको बेहोशी आ जाती थी। आप फिर कभी इस योग्य न हो सके कि कुछ देर बैठ कर कुछ क्रियाएं मुझे बता सकते। आपने कहा था, मेरा योग भ्रष्ट हो गया। प्रयत्न करूंगा, मरण समय पास रहना, मुझसे पूछ लेना कि मैं कहां जन्म लूंगा। सम्भव है कि मैं बता सकूं। नित्य-प्रति सेर-आध-सेर खून गिर जाने पर भी कभी क्षुब्ध न होते थे। आपकी आवाज भी कमजोर न हुई। जैसे अद्वितीय आप वक्ता थे, वैसे ही आप लेखक भी थे। आपके कुछ लेख तथा पुस्तकें आपके एक भक्त के पास थी, जो यों ही नष्ट हो गई। कुछ लेख तथा पुस्तकें श्री स्वामी अनुभवानन्दजी शान्त ले गए थे। कुछ लेख आपने प्रकाशित भी करवाए थे। लगभग 48 वर्ष की उम्र में आपने इहलोक त्याग किया। इस स्थान पर मैं महात्मा कबीरदास के कुछ अमृत वचनों का उल्लेख करता हूं, जो मुझे बड़े प्रिय तथा शिक्षाप्रद मालूम हुए—

'कबिरा' शरीर सराय है झाड़ा देके बस।
जब भठियारी खुश रहै तब जीवन का रस॥ १॥
'कबिरा' क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकरा डारि कें सुमिरन करो निशंक॥ २॥
नींद निसानी मीच की उठ्ठ 'कबिरा' जाग।
और रसायन त्याग के नाम रसायन चाख॥ ३॥
चलना है रहना नहीं चलना बिसवें बीस।
'कबिरा' ऐसे सुहाग पर कौन बंधावे सीस॥ ४॥
अपने अपने चोर को सब कोई डारे मारि।
मेरा चोर जो मोहिं मिले सर्बस डारूं वारि॥ ५॥
कहे सुने की है नहीं देखा देखी बात।
दूल्हा दुल्हिन मिलि गये सूनी परीं बरात॥ ६॥

नैनन की करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकन की चिक डारि कें पीतम लेहु रिझाय॥ ७॥
प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दै सके, नाम प्रेम का लेय॥ ८॥
सीस उतारे भुंइ धरै, तापे राखै पांव।
दास 'कबिरा' यूं कहै ऐसा होय तो आव॥ ९॥
निन्दक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना उज्ज्वल करे सुभाय॥ १०॥

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन

वर्तमान समय में इस देश की कुछ ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जितने धनी तथा गणमान्य व्यक्ति हैं उनमें 99 प्रतिशत ऐसे है जो अपनी सन्तान-रूपी अमूल्य धन-राशि को अपने नौकर तथा नौकरानियों के हाथ में सौंप देते हैं। उनकी जैसी इच्छा हो, वे उन्हें बनावें! मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी अपने व्यवसाय तथा नौकरी इत्यादि में फंसे रहने के कारण सन्तान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकते। सस्ता कामचलाऊ नौकर या नौकरानी रखते हैं और उन्हीं पर बाल-बच्चों का भार सौंप देते हैं, ये नौकर बच्चों को नष्ट कर देते हैं। यदि कुछ भगवान् की दया होगई, और बच्चे नौकर-नौकरानियों के हाथ से बच गए तो मुहल्ले की गन्दगी से बचना बड़ा मुश्किल है। रहे-सहे स्कूल में पहुंच कर पारंगत हो जाते हैं। कालिज में पहुंचकर ये लोग समाचार-पत्रों में दिए औषधियों के विज्ञापन देख-देखकर दवाइयों को मंगा-मंगाकर धन नष्ट करना आरम्भ करते हैं। 95 प्रतिशत की आंखें खराब हो जाती हैं। कुछ को शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ को फैशन के विचार से ऐनक लगाने की बुरी आदत पड़ जाती है। सौन्दर्योपासना तो उनकी रग-रग में कूट-कूटकर भर जाती है। शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा हो जिसकी प्रेम-कथाएं प्रचलित न हों। ऐसी अजीब-अजीब बातें सुनने में आती हैं कि जिनका उल्लेख करने से भी ग्लानि होती है। यदि कोई विद्यार्थी सच्चरित्र बनने का प्रयत्न भी करता है और स्कूल या कालिज जीवन में उसे कुछ अच्छी शिक्षा भी मिल जाती है, तो परिस्थितियां जिनमें उसे निर्वाह करना पड़ता है, उसे सुधरने नहीं देतीं। वे विचारते हैं कि थोड़ा-सा इस जीवन का आनन्द ले लें, यदि कुछ खराबी पैदा हो गई तो दवाई खाकर या

पौष्टिक पदार्थों का सेवन करके दूर कर लेंगे। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। अंग्रेजी की कहावत है 'Only for once and for ever' तात्पर्य यह है कि यदि एक समय कोई बात पैदा हुई, मानो सदा के लिए रास्ता खुल गया। दवाइयां कोई लाभ नहीं पहुंचाती। अण्डों का जूस, मछली के तेल, मांस आदि पदार्थ भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। सबसे आवश्यक बात चरित्र सुधारना ही होती है। विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों को उचित है कि वे देश की दुर्दशा पर दया करके अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करें। सार में ब्रह्मचर्य ही संसारी शक्तियों का मूल है बिना ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किए मनुष्य-जीवन नितान्त शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है विद्या, बल तथा बुद्धि सब ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त होते हैं। संसार में जितने बड़े आदमी हुए हैं, उनमें से अधिकतर ब्रह्मचर्य व्रत के प्रताप से ही बड़े बने और सैकड़ों-हजारों वर्षबाद भी उनका यशगान करके मनुष्य अपने आपको कृतार्थ करते हैं। ब्रह्मचर्य की महिमा यदि जाननी हो तो परशुराम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, भीष्म, ईसा, मेजिनी बंदा, रामकृष्ण, दयानन्द तथा राममूर्ति की जीवनियों का अध्ययन करो।

जिन विद्यार्थियों को बाल्यावस्था में किसी कुटेव की बान पड़ जाती है, या जो बुरी संगत में पकड़कर अपना आचरण बिगाड़ लेते हैं और फिर अच्छी शिक्षा पाने पर आचरण सुधारने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु सफल मनोरथ नहीं होते, उन्हें भी निराश न होना चाहिए। मनुष्य-जीवन अभ्यासों का एक समूह है। मनुष्य के मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक विचार तथा भाव उत्पन्न होते रहते हैं। उनमें जो उसे रुचिकर होते हैं, वे प्रथम कार्य-रूप में परिणत होते हैं। क्रिया के बार-बार होने से उसमें से ऐच्छिक भाव निकल जाता है और उसमें तात्कालिक प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। इन तात्कालिक प्रेरक क्रियाओं को, जो पुनरावृत्ति का फल हैं, 'अभ्यास' कहते हैं। मानवी चरित्र इन्हीं अभ्यासों द्वारा बनता है। अभ्यास से तात्पर्य आदत, स्वभाव, बान है। अभ्यास अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। यदि हमारे मन में निरन्तर अच्छे विचार उत्पन्न हों, तो उनका फल अच्छे अभ्यास होंगे और यदि मन बुरे विचारों में लिप्त रहे, तो निश्चय रूपेण अभ्यास बुरे होंगे। मन इच्छाओं का केन्द्र है। उन्हीं की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्यासों के बनने में पैतृक संस्कार, अर्थात् माता-पिता के अभ्यासों के अनुसार अनुकरण ही बच्चों के अभ्यास का सहायक होता है। दूसरे, जैसी

परिस्थितियों में निवास होता है, वैसे ही अभ्यास भी पड़ते हैं। तीसरे, प्रयत्न से भी अभ्यासों का निर्माण होता है। यह शक्ति इतनी प्रबल हो सकती है कि इसके द्वारा मनुष्य पैतृक संस्कार तथा परिस्थितियों को भी जीत सकता है। हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य अभ्यासों के अधीन है। यदि अभ्यासों द्वारा हमें कार्य में सुगमता न प्रतीत होती, तो हमारा जीवन बड़ा दुखमय प्रतीत होता। लिखने का अभ्यास, वस्त्र पहनना, पठन-पाठन इत्यादि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यदि हमें प्रारम्भिक समय की भांति सदैव सावधानी से काम लेना हो, तो कितनी कठिनता प्रतीत हो! इसी प्रकार बालक का खड़ा होना और चलना भी है कि उस समय वह कितना कष्ट अनुभव करता है, किन्तु एक मनुष्य मीलों तक चला जाता है। बहुत लोग तो चलते-चलते नींद भी ले-लेते हैं। जैसे जेल में बाहरी दीवार पर घड़ी में चाबी लगाने वाले, जिन्हें बराबर छः घण्टे चलना होता है, वे बहुधा चलते चलते सो लिया करते हैं।

मानसिक भावों को शुद्ध रखते हुए अन्तःकरण को उच्च विचारों में बलपूर्वक संलग्न करने का अभ्यास करने से अवश्य सफलता मिलेगी। प्रत्येक विद्यार्थी या नवयुवक को, जो कि ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन की इच्छा रखता है, उचित है कि अपनी दिनचर्या निश्चित करे। खान-पानादि का विशेष ध्यान रखे। महात्माओं के जीवन-चरित्र तथा चरित्र-संगठन सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन करे। प्रेमालाप तथा उपन्यासों में समय नष्ट न करे। खाली समय अकेला न बैठे। जिस समय कोई बुरे विचार उत्पन्न हों, तुरन्त शीतल जलपान कर घूमने लगे या किसी अपने से बड़े के पास जाकर बातचीत करने लगे। अश्लील (इश्कभरी) गजलों, शेरों तथा गानों को न पढ़े और न सुने। स्त्रियों के दर्शन से बचता रहे। माता तथा बहन से भी एकान्त में न मिले। सुन्दर सहपाठियों या अन्य विद्यार्थियों से स्पर्श तथा आलिंगन की भी आदत न डाले।

विद्यार्थी प्रातःकाल सूर्य उदय होने से एक घण्टा पहले शैया त्यागकर शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करे या वायु-सेवनार्थ बाहर मैदान में जावे। सूर्य उदय होने के पांच-दस मिनट पूर्व स्नान से निवृत्त होकर यथा-विश्वास परमात्मा का ध्यान करे। सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करे। यदि कुएं का जल प्राप्त न हो तो जाड़ों में जल को थोड़ा-सा गुनगुना कर ले और गर्मियों में शीतल जल से स्नान करे। स्नान करने के पश्चात् एक खुरखुरे तौलिये या अंगोछे से शरीर को खूब मले।

उपासना के पश्चात् थोड़ा-सा जलपान करे। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है कि गेहूं का दलिया रंधवाकर यथा-रुचि मीठा या नमक डालकर खावे। फिर अध्ययन करे और दस बजे से ग्याहर बजे के मध्य में भोजन कर ले। भोजन में मांस, मछली, चरपरे, खट्टे, गरिष्ठ, बासी तथा उत्तेजक पदार्थों का त्याग करे। प्याज, लहसुन, लाल मिर्च, आम की खटाई और अधिक मसालेदार भोजन कभी न खावे। सात्विक भोजन करे। शुष्क भोजन का भी त्याग करे। जहां तक हो सके सब्जी अर्थात् साग अधिक खावे। भोजन खूब चबा-चबा कर किया करे। अधिक गरम या अधिक ठण्डा भोजन भी वर्जित है। स्कूल अथवा कालिज से आकर थोड़ा-सा आराम करके एक घण्टा लिखने का काम करके खेलने के लिए जावे। मैदान में थोड़ा-सा घूमे भी। घूमने के लिए चौक बाजार की गन्दी हवा में जाना ठीक नहीं। स्वच्छ वायु का सेवन करे। संध्या समय भी शौच अवश्य जावे। थोड़ा-सा ध्यान करके हल्का-सा भोजन कर ले। यदि हो सके तो रात्रि के समय केवल दुग्ध पीने का अभ्यास डाले या फल खा लिया करे। स्वप्नदोषादिक व्याधियां केवल पेट के भारी होने से ही होती हैं। जिस दिन भोजन भली-भांति नहीं पचता, उसी दिन विकार हो जाता है, या मानसिक भावनाओं की अशुद्धता से निद्रा ठीक न आकर स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाता है। रात्रि के समय साढ़े दस बजे तक पठन-पाठन करे पुन: सो जावे। सदैव खुली हवा में सोना चाहिए। बहुत मुलायम और चिकने बिस्तर पर न सोवे। जहां तक हो सके, लकड़ी के तख्त पर कम्बल या गाढ़े की चद्दर बिछाकर सोवे। अधिक पाठ न करना हो तो 9½ या 10 बजे सो जावे। प्रात:काल 3½ या 4 बजे उठकर कुल्ला करके शीतल जलपान करे और शौच से निवृत्त हो पठन-पाठन करे। सूर्योदय के निकट फिर नित्य की भांति व्यायाम या भ्रमण करे। सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहाँ जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड-बैठक करे। प्रोफेसर साहब की रीति विद्यार्थियों के लिए लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अलावा शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने कमरे में वीरों और महात्माओं के चित्र रखने चाहिएं।

द्वितीय खण्ड

स्वदेश-प्रेम

पूज्यपाद श्री **स्वामी सोमदेव** का देहान्त हो जाने के पश्चात् जब से अंग्रेजी के नवें दर्जे में आया, कुछ स्वदेश सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन आरम्भ हुआ। शाहजहांपुर में सेवा-समिति की नींव पं० श्रीराम वाजपेयीजी ने डाली, उसमें भी बड़े उत्साह से कार्य किया। दूसरों की सेवा काभाव हृदय में उदय हुआ। कुछ समझ में आने लगा कि वास्तव में देशवासी बड़े दु:खी हैं। उसी वर्ष मेरे पड़ोसी तथा मित्र, जिनसे मेरा स्नेह अधिक था, एण्ट्रेस की परीक्षा पास करके कालिज में शिक्षा पाने चले गये। कालिज की स्वतन्त्र वायु में उनके हृदय में भी स्वदेश के भाव उत्पन्न हुए। उसी साल लखनऊ में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का उत्सव हुआ। मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। कतिपय सज्जनों से भेंट हुई। देशदशा का कुछ अनुमान हुआ, और निश्चय हुआ कि देश के लिए कोई विशेष कार्य किया जाए। देश में जो कुछ हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है। भारतवासियों के दु:ख तथा दुर्दशा की जिम्मेदारी गवर्नमेण्ट पर ही है, अतएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिए। मैंने भी इस प्रकार के विचारों में योग दिया। कांग्रेस में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण से गरम दल के अधिक व्यक्ति आए हुए थे। कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ था। उसके दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला। लखनऊ स्टेशन पर बड़ा जमाव था। स्वागत कारिणी समिति के सदस्यों से मालूम हुआ कि लोकमान्य का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जायेगा और शहर में सवारी न निकाली जाएगी। जिसका कारण यह था कि स्वागत कारिणी समिति के प्रधान पं० जगतनारायणजी थे। अन्य गणमान्य सदस्यों में पं० गोकरणनाथजी तथा अन्य उदार दल वालों (माडरेटों) की संख्या अधिक थी। माडरेटों को भय था कि यदि लोकमान्य की सवारी शहर में निकाली गई तो कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक सम्मान होगा, जिसे वे उचित न समझते थे। अत: उन सबने प्रबन्ध किया कि जैसे ही लोकमान्य तिलक पधारें, उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर-बाहर

निकाल ले जाएं। इन सब बातों को सुनकर नवयुवकों को बड़ा खेद हुआ। कालिज के एक एम० ए० के विद्यार्थी ने इस प्रबन्ध का विरोध करते हुए कहा कि लोकमान्य का स्वागत अवश्य होना चाहिए। मैंने भी इस विद्यार्थी के कथन में सहयोग दिया। इसी प्रकार कई नवयुवकों ने निश्चय किया कि, जैसे ही लोकमान्य स्पेशल से उतरें उन्हें घेरकर गाड़ी में बिठा लिया जाय और सवारी निकाली जाय। स्पेशल आने पर लोकमान्य सबसे पहले उतरे। स्वागत-कारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के स्वयं-सेवकों का घेरा बनाकर लोकमान्य को मोटर में जा बिठाया। मैं तथा एम० ए० का विद्यार्थी मोटर के आगे लेट गये। सब कुछ समझाया गया, मगर किसी की एक न सुनी। हम लोगों की देखा-देखी और कई नवयुवक भी मोटर के सामने आकर बैठ गये। उस समय मेरे उत्साह का ये हाल था कि मुंह से बात न निकलती थी, केवल रोता था और कहता था, **'मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ।'** स्वागतकारिणी के सदस्यों से कांग्रेस कें प्रधान को ले जाने वाली गाड़ी मांगी, उन्होंने देना स्वीकार न किया। एक नवयुवक ने मोटर का टायर काट दिया। लोकमान्यजी बहुत कुछ समझाते किन्तु वहां सुनता कौन ? एक किराये की गाड़ी से घोड़े खोलकर लोकमान्य के पैरों पर सिर रखकर उन्हें उसमें बिठाया और सबने मिलकर हाथों से गाड़ी खींचनी शुरू की। इस प्रकार लोकमान्य का इस धूमधाम से स्वागत हुआ कि किसी नेता की उतने जोरों से सवारी न निकाली गई। लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे कि एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाय। लोकमान्य पर फूलों की जो वर्षा की जाती थी, उसमें जो फूल नीचे गिर जाते थे उन्हें उठाकर लोग पल्ले में बान्ध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के पैर पड़ते, वहां की धूल सबके मत्थों पर दिखाई देती। कुछ उस धूल को भी अपने रूमाल में बाँध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।

क्रान्तिकारी आन्दोलन

कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ में ही मालूम हुआ कि एक गुप्त समिति है, जिसका मुख्य उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना है। यहीं से क्रान्तिकारी समिति की चर्चा सुनकर कुछ समय बाद मैं भी क्रान्तिकारी समिति के कार्य में योग देने लगा। अपने एक मित्र द्वारा क्रान्तिकारी समिति का सदस्य हो गया। थोड़े ही दिन में मैं कार्यकारिणी

का सदस्य बना लिया गया। समिति में धन की बहुत कमी थी, उधर हथियारों की भी जरूरत थी। जब घर वापस आया, तब विचार हुआ कि एक पुस्तक प्रकाशित की जाय और उसमें जो लाभ हो उससे हथियार खरीदे जाएं। पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए धन कहां से आये ? विचार करते-करते मुझे एक चाल सूझी। मैंने अपनी माताजी से कहा कि मैं कुछ रोजगार करना चाहता हूं, उसमें अच्छा लाभ होगा। यदि रुपये दे सकें तो बड़ा अच्छा हो। उन्होंने 200 रुपये दिये। **'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'** नामक पुस्तक लिखी जा चुकी थी। प्रकाशित होने का प्रबन्ध हो गया। थोड़े रुपये की जरूरत और पड़ी, मैंने माताजी से 200 रुपये और लिये। पुस्तक की बिक्री हो जाने पर माताजी के रुपये पहले चुका दिये। लगभग 200 रुपये और भी बचे। पुस्तकें अभी बिकने के लिए बाकी थीं। उसी समय **'देशवासियों के नाम सन्देश'** नामक एक पर्चा छपवाया गया, क्योंकि **पं० गेंदालालजी, ब्रह्मचारीजी** के दलसहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गये थे। अब सब विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह के साथ काम करने की प्रतिज्ञा की। पर्चे कई जिलों में लगाये गये और बांटे गए। पर्चे तथा **'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'** पुस्तक दोनों संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जब्त कर लिये।

हथियारों की खरीद

अधिकतर लोगों का विचार है कि देशी राज्यों में हथियार (रिवाल्वर, पिस्तौल तथा राइफलें इत्यादि) सब कोई रखता है, और बन्दूक इत्यादि पर लाइसेन्स नहीं होता। अतएव इस प्रकार के अस्त्र बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं। देशी राज्यों में हथियारों पर कोई लाइसेन्स नहीं, यह बात बिलकुल ठीक है, और हर एक को बन्दूक इत्यादि रखने की आजादी भी है कि कारतूस या विलायती बारूद खरीदने पर पुलिस को सूचना देनी होती है। राज्य में तो कोई ऐसी दूकान नहीं होती, जिस पर कारतूस या कारतूसी हथियार मिल सकें। यहां तक कि विलायती बारूद और बन्दूक की टोपी भी नहीं मिलती, क्योंकि ये सब चीजें बाहर से मंगानी पड़ती हैं। जितनी चीजें इस प्रकार की बाहर से मंगाई जाती हैं, उनके लिए रेजिडेण्ट (गवर्नमेण्ट का प्रतिनिधि, जो रियासतों में रहता है) की आज्ञा लेनी पड़ती है। बिना रेजिडेण्ट की मंजूरी के हथियारों सम्बन्धी कोई चीज बाहर से रियासत में नहीं आ सकती। इस कारण इस खटखट से बचने के लिए रियासत में ही टोपीदार बन्दूकें बनती हैं,

और देशी बारूद भी वहीं के लोग शोरा, गन्धक तथा कोयला मिलाकर बना लेते हैं। बन्दूक की टोपी चुरा-छिपाकर मंगा लेते हैं। नहीं तो टोपी के स्थान पर भी मनसल और पुटाश अलग-अलग पीसकर दोनों को मिलाकर उसी से काम चलाते हैं। हथियार रखने की आजादी होने पर भी ग्रामों में किसी एक-दो धनी या जमींदार के यहां टोपीदार बन्दूक या टोपीदार छोटे पिस्तौल होते हैं, जिनमें ये लोग रियासत की बनी हुई बारूद काम में लाते हैं। यह बारूद बरसात में सीलन खा जाती है और काम नहीं देती। एक बार मैं अकेला रिवाल्वर खरीदने गया। उस समय समझता था कि हथियारों की दूकान होगी, सीधे जाकर दाम देंगे और रिवाल्वर लेकर चले आयेंगे। प्रत्येक दूकान देखी, कहीं किसी पर बन्दूक इत्यादि का विज्ञापन या कोई दूसरा निशान न पाया। फिर एक तांगे पर सवार होकर सब शहर घूमा। तांगे वाले ने पूछा कि क्या चाहिए। मैंने उससे डरते-डरते अपना उद्देश्य कहा। उसी ने दो-तीन घूम-फिरकर एक टोपीदार रिवाल्वर खरीदवा दिया और देशी बनी हुई बारूद एक दूकान से दिला दी। मैं कुछ जानता तो था नहीं, एकदम दो सेर बारूद खरीदी, जो घर पर सन्दूक में रखे-रखे बरसात में सील खाकर पानी हो गई। मुझे बड़ा दुःख हुआ। दूसरी बार जब मैं क्रान्तिकारी समिति का सदस्य हो चुका था, तब दूसरे सहयोगियों की सम्मति से दो सौ रुपए लेकर हथियार खरीदने गया। इस बार मैंने बहुत प्रयत्न किया तो एक कबाड़ी की-सी दूकान पर कुछ तलवारें, खंजर, कटार तथा दो-चार टोपीदार बन्दूकें रखी देखीं। मैंने बड़ा साहस करके उससे पूछा कि क्या आप ये चीजें बेचते हैं? उसने जब 'हां' में उत्तर दिया तो मैंने दो-चार चीजें देखीं, दाम पूछे। इसी प्रकार वार्तालाप करके पूछा कि क्या आप कारतूसी हथियार नहीं बेचते या और कहीं नहीं बिकते? तब उसने सब विवरण सुनाया। उस समय उसके पास टोपीदार एक नल के छोटे-छोटे दो पिस्तौल थे। मैंने वे दोनों खरीद लिए। एक कटार भी खरीदी। उसने वादा किया कि यदि आप फिर आयें तो कुछ कारतूसी हथियार जुटाने का प्रयत्न किया जाये। लालच बुरी बला है, इस कहावत के अनुसार तथा इसलिए भी कि हम लोगों को कोई दूसरा ऐसा जरिया भी न था, जहां से हथियार मिल सकते, मैं कुछ दिनों बाद फिर गया। इस समय उसी ने एक बड़ा सुन्दर कारतूसी रिवाल्वर दिया। कुछ पुराने कारतूस दिये। रिवाल्वर था तो पुराना, किन्तु बड़ा ही उत्तम था। दाम

उसके नये के बराबर देने पड़े। अब उसे विश्वास हो गया कि यह हथियारों के खरीदार हैं। उसने प्राणपण से चेष्टा की और कई रिवाल्वर तथा दो-तीन राइफले जुटाईं। उसे भी अच्छा लाभ हो जाता था। प्रत्येक वस्तु पर वह बीस-तीस रुपये मुनाफा ले लेता था। बाज-बाज चीज पर दूना नफा खा लेता था। इसके बाद हमारी संस्था के दो-तीन सदस्य मिलकर गये। दूकानदार ने भी हमारी उत्कट इच्छा को देखकर इधर-उधर से पुराने हथियारों को खरीद करके उनकी मरम्मत की, और नया-सा करके हमारे हाथ बेचना शुरू किया। खूब ठगा। हम लोग कुछ जानते नहीं थे। इस प्रकार अभ्यास करने से कुछ नया पुराना समझने लगे। एक दूसरे सिक्लीगर से भेंट हुई। वह स्वयं कुछ नहीं जानता था, किन्तु उसने वचन दिया कि वह कुछ रईसों से हमारी भेंट करा देगा। उसने एक रईस से मुलाकात कराई जिसके पास एक रिवाल्वर था। रिवाल्वर खरीदने की हमने इच्छा प्रकट की। उन महाशय ने उस रिवाल्वर के डेढ़ सौ रुपये मांगे। रिवाल्वर नया था। बड़े कहने-सुनने पर सौ कारतूस उन्होंने दिये और 155 रुपये लिये। 150 रुपये उन्होंने स्वयं लिए, 5 रुपये सिक्लीगर को कमीशन के तौर पर देने पड़े। रिवाल्वर चमकता हुआ नया था, समझे अधिक दामों का होगा। खरीद लिया। विचार हुआ कि इस प्रकार ठगे जाने से काम न चलेगा। किसी प्रकार कुछ जानने का प्रयत्न किया जाए। बड़ी कोशिश के बाद कलकत्ता, बम्बई से बन्दूक-विक्रेताओं की लिस्टें मंगाकर देखीं, देखकर आंखें खुल गईं। जितने रिवाल्वर या बन्दूकें हमने खरीदी थीं, एक को छोड़कर, सबके दुगने दाम दिये थे 155 रुपये के रिवाल्वर के दाम केवल 30 रुपये ही थे और 10 रुपये के सौ कारतूस, इस प्रकार कुल समान 40 रुपये का था, जिसके बदले 155 रुपये देने पड़े! बड़ा खेद हुआ। करें तो क्या करें! और कोई दूसरा जरिया भी तो न था।

कुछ समय पश्चात् कारखानों की लिस्टें लेकर तीन-चार सदस्य मिलकर गए। खूब जांच-खोज की। किसी प्रकार रियासत की पुलिस को पता चल गया। एक खुफिया पुलिस वाला मुझे मिला, उसने कई हथियार दिलाने का वादा किया, और वह मुझे पुलिस इन्सपेक्टर के घर ले गया। दैवात् उस समय पुलिस इन्स्पेक्टर घर पर मौजूद न थे। उनके द्वार पर एक पुलिस का सिपाही बैठा था, जिसे मैं भली-भांति जानता था। मुहल्ले में खुफिया पुलिस वाले की आंख बचाकर पूछा कि अमुक

घर किसका है ? मालूम हुआ पुलिस इन्स्पेक्टर का ! मैं इतस्ततः करके जैसे-तैसे निकल आया और अति शीघ्र अपने ठहरने का स्थान बदला। उस समय हम लोगों के पास दो राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तौल खरीदे हुए मौजूद थे। किसी प्रकार उस खुफिया पुलिस वाले को एक कारीगर से जहां पर कि हम लोग अपने हथियारों की मरम्मत कराते थे, मालूम हुआ कि हम में से एक व्यक्ति उसी दिन जाने वाला था, उसने चारों ओर स्टेशन पर तार दिलवाए। रेलगाड़ियों की तलाशी ली गई। पर पुलिस की असावधानी के कारण हम बाल-बाल बच गए !

रुपए की चपत बुरी होती है। एक पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट के पास एक राइफल थी। मालूम हुआ वह बेचते हैं। हम लोग पहुंचे। अपने आपको रियासत का रहने वाला बतलाया। उन्होंने निश्चय करने के लिए बहुत से प्रश्न पूछे, क्योंकि हम लोग लड़के तो थे ही। पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट पेंशनयाफ्ता जाति के मुसलमान थे। हमारी बातों पर उन्हें पूर्ण विश्वास न हुआ। कहा कि अपने थानेदार से लिखा लाओ कि वह तुम्हें जानता है। मैं गया। जिस स्थान का रहने वाला बताया था, वहां के थानेदार का नाम मालूम किया, और एक-दो जमींदारों के नाम मालूम करके एक पत्र लिखा कि मैं उस स्थान के रहने वाले अमुक जमींदार का पुत्र हूं और वे मुझे भली-भांति जानते हैं। उसी पत्र पर जमींदारों के हिन्दी में और पुलिस के दारोगा के अंग्रेजी में हस्ताक्षर बना, पत्र ले जा कर पुलिस कप्तान साहब को दिया। बड़े गौर से देखने के बाद वह बोले, 'मैं थाने में दर्याफ्त कर लूं। तुम्हें भी थाने में चलकर इत्तला देनी होगी कि राइफल खरीद रहे हैं।' हम लोगों ने कहा कि हमने आपके इत्मीनान के लिए इतनी मुसीबत झेली, दस-बाहर रुपये खर्च किए, अगर अब भी इत्मीनान न हो तो मजबूरी है। हम पुलिस में ना जाएंगे राइफल के दाम लिस्ट में 180 रुपये लिखे थे, वह 250 मांगते थे, साथ में दो सौ कारतूस भी दे रहे थे। कारतूस भरने का सामान भी देते थे, जो लगभग 50 रुपये का होता इस प्रकार पुरानी राइफल के नई के समान दाम मांगते थे। हम लोग भी 250 रुपये देते थे। पुलिस कप्तान ने भी विचारा कि पूरे दाम मिल रहे हैं। स्वयं वृद्ध हो चुके थे। कोई पुत्र भी न था। अतएव 250 रुपये लेकर राइफल दे दी। पुलिस में कुछ पूछने न गए। उन्हीं दिनों राज्य के एक उच्च पदाधिकारी के नौकर को मिलकर उनके यहां से रिवाल्वर चोरी कराया। जिसके दाम लिस्ट में 75 रुपये थे, उसे 100

रुपये में खरीदा। एक माउजर पिस्तौल भी चोरी कराया, जिसके दाम लिस्ट में उस समय 200 रुपये थे। हमें माउजर पिस्तौल की प्राप्ति की बड़ी उत्कट इच्छा थी। बड़े भारी प्रयत्न के बाद यह माउजर पिस्तौल मिला, जिसका मूल्य 300 रुपये देना पड़ा कारतूस एक भी न मिला। हमारे पुराने मित्र कबाड़ी महोदय के पास माउजर पिस्तौल के पचास कारतूस पड़े थे। उन्होंने बड़ा काम दिया। हममें से किसी ने भी पहले माउजर पिस्तौल देखा भी न था। कुछ न समझ सके कि कैसे प्रयोग किया जाता है। बड़े कठिन परिश्रम से उसका प्रयोग समझ में आया।

हमने तीन राइफलें, एक बारह बोर की दोनाली कारतूसी बन्दूक, दो टोपीदार बन्दूकें, तीन टोपीदार रिवाल्वर और पांच कारतूसी रिवाल्वर खरीदे। प्रत्येक हथियार के साथ पचास या सौ कारतूस भी ले लिए। इन सब में लगभग चार हजार रुपए व्यय हुए। कुछ कटार तथा तलवारें इत्यादि भी खरीदी थी।

मैनपुरी षड्यन्त्र

इधर तो हम लोग अपने कार्य में व्यस्त थे, उधर मैनपुरी के एक सदस्य पर लीडरी का भूत सवार हुआ। उन्होंने अपना पृथक् संगठन किया। कुछ अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित किए। धन की कमी की पूर्ति के लिए एक सदस्य से कहा कि अपने किसी कुटुम्बी के यहां डाका डलवाओ। उस सदस्य ने कोई उत्तर न दिया। उसे आज्ञापत्र दिया गया और मार देने की धमकी दी गई। वह पुलिस के पास गया। मामला खुला। मैनपुरी में धर-पकड़ शुरू हो गई। हम लोगों को भी समाचार मिला। दिल्ली में कांग्रेस होने वाली थी। विचार किया गया कि '**अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली**' नामक पुस्तक जो यू० पी० सरकार ने जब्त कर ली थी, कांग्रेस के अवसर पर बेच दी जावे। कांग्रेस के उत्सव पर मैं शाहजहांपुर की सेवा-समिति के साथ आपकी ऐम्बूलेन्स की टोली लेकर गया था। ऐम्बुलेन्स वालों को प्रत्येक स्थान पर बिना रोके जाने की आज्ञा थी। कांग्रेस-पण्डाल के बाहर खुले रूप में नवयुवक यह कह पुस्तक बेच रहे थे—"**यू० पी० में जब्त किताब 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली'**।" खुफिया पुलिस वालों ने कांग्रेस का कैम्प घेर लिया। सामने ही आर्यसमाज का कैम्प था, वहां पर पुस्तक विक्रेताओं की पुलिस वालों ने तलाशी लेनी आरम्भ कर दी। मैंने कांग्रेस कैम्प पर अपने स्वयं सेवक इसलिए छोड़ दिए कि वे बिना स्वागतकारिणी

समिति के मन्त्री या प्रधान की आज्ञा पाए किसी पुलिस वाले को कैम्प में न घुसने दें। आर्य-समाज के कैम्प में गया। सब पुस्तकें एक टैण्ट में जमा थीं। मैंने अपने ओवरकोट में सब पुस्तकें लपेटीं, जो लगभग दो सौ होंगी और उसे कन्धे पर डालकर पुलिस वालों के सामने से निकला। मैं वर्दी पहने था, टोप लगाए हुए था। एम्बुलेन्स का बड़ा-सा लाल बिल्ला मेरे हाथ पर लगा हुआ था, किसी ने कोई सन्देह भी न किया और पुस्तकें बच गईं!

दिल्ली कांग्रेस से लौटकर शाहजहांपुर आये। वहां भी पकड़-धकड़ शुरू हुई। हम लोग वहां से चल कर दूसरे शहर के एक मकान में ठहर हुए थे। रात्रि के समय मकान मालिक ने बाहर से मकान में ताला डाल दिया। ग्यारह बजे के लगभग हमारा एक साथी बाहर ले आया। उसने बाहर से ताला पड़ा देख पुकारा। हम लोगों को भी सन्देह हुआ सबके सब दीवार पर से उतर कर मकान छोड़ कर चल दिए। अंधेरी रात थी। थोड़ी दूर गए थे कि हठात् की आवाज आई, 'खड़े हो जाओ कौन जाता है?' हम लोग सात-आठ आदमी थे। समझे कि घिर गए! कदम उठाना ही चाहते थे कि फिर आवाज आई, 'खड़े हो जाओ, नहीं तो गोली मारते हैं।' हम लोग खड़े हो गए। थोड़ी देर में एक पुलिस के दारोगा बन्दूक हमारी तरफ किए हुए, रिवाल्वर कन्धे में लटकाए, कई सिपाहियों को लिए हुए आ पहुंचे। पूछा—'कौन हो? कहां जाते हो?' हम लोगों ने कहा—'विद्यार्थी हैं, स्टेशन पर जा रहे हैं।' 'कहां जाओगे?' 'लखनऊ।' उस समय रात के दो बजे थे। लखनऊ की गाड़ी पांच बजे जाती थी। दारोगा जी को शक हुआ। लालटेन आई हम लोगों के चेहरे रोशनी में देखकर उनका शक जाता रहा। कहने लगे—'रात के समय लालटेन लेकर चला कीजिए। गलती हुई, मुआफ़ कीजिए।' हम लोग भी सलाम झाड़कर चलते बने। एक बाग में फूंस की मड़ैया पड़ी थी। उसमें जा बैठे। पानी बरसने लगा। मूसलाधार पानी गिरा। सब कपड़े भीग गये। जमीन पर भी पानी भर गया। जनवरी का महीना था। खूब जाड़ा पड़ रहा था। रातभर भीगते और ठिठुरते रहे। बड़ा कष्ट हुआ। प्रातःकाल धर्मशाला में जाकर कपड़े सुखाये। दूसरे दिन शाहजहांपुर आकर, बन्दूकें जमीन में गाड़कर प्रयाग पहुंचे।

विश्वासघात

प्रयाग की एक धर्मशाला में दो-तीन दिन निवास करके विचार

किया गया कि एक व्यक्ति बहुत दुर्बलात्मा है, यदि वह पकड़ा गया तो वह सब भेद खुल जायेगा, अतः उसे मार दिया जाये। मैंने कहा—'मनुष्य हत्या ठीक नहीं।' पर अन्त में निश्चय हुआ कि कल चला जाय और उसकी हत्या कर दी जाये। मैं चुप हो गया। हम लोग चार सदस्य साथ थे। हम चारों तीसरे पहर झूंसी का किला देखने गये। जब लौटे तब सन्ध्या हो चुकी थी। उस समय गंगा पार करके यमुना-तट पर गये। शौचादि से निवृत्त होकर मैं सन्ध्या समय उपासना करने के लिए रेती पर बैठ गया। एक महाशय ने कहा—'यमुना के निकट बैठो।' मैं तट से दूर एक ऊंचे स्थान पर बैठा था। मैं वहीं बैठा रहा। वे तीनों भी मेरे पास ही आकर बैठ गये। मैं आंखें बन्द किये ध्यान कर रहा था। थोड़ी देर में खट से आवाज हुई। समझा कि साथियों में से कोई कुछ कर रहा होगा। तुरन्त ही फायर हुआ। गोली सन से मेरे कान के पास से निकल गई! मैं समझ गया कि मेरे ऊपर ही फायर हुआ। मैं रिवाल्वर निकालता हुआ आगे को बढ़ा। पीछे फिर कर देखा, वह महाशय माउजर हाथ में लिए मेरे ऊपर गोली चला रहे हैं! कुछ दिन पहले मुझसे उनका झगड़ा हो चुका था, किन्तु बाद में समझौता हो गया था। फिर भी उन्होंने यह कार्य किया! मैं भी सामना करने को प्रस्तुत हुआ। तीसरा फायर करके वह भाग खड़े हुए। उनके साथ प्रयाग ठहरे हुए दो सदस्य और भी थे। वे तीनों भाग गये। मुझे देर इसलिए हुई कि मेरा रिवाल्वर चमड़े के खोल में था। यदि आधा मिनट और उनमें कोई खड़ा रह जाता तो मेरी गोली का निशाना बन जाता! अब सब भाग गए, तब मैं गोली चलाना व्यर्थ जान, वहां से चला आया। मैं बाल-बाल बच गया। मुझसे दो गज के फासले पर से माउजर पिस्तौल से गोलियां चलाई गईं और उस अवस्था में जबकि मैं बैठा हुआ था! मेरी समझ में नहीं आया कि मैं बच कैसे गया! पहला कारतूस फूटा नहीं। तीन फायर हुए। मैं गद्‌गद्‌ होकर परमात्मा का स्मरण करने लगा। आनन्दोल्लास में मुझे मुर्छा आ गई। मेरे हाथ से रिवाल्वर तथा खोल दोनों गिर गये। यदि उससमय कोई निकट होता तो मुझे भली-भांति मार सकता था। मेरी यह अवस्था लगभग एक मिनट तक रही होगी कि मुझसे किसी ने कहा, 'उठ!' मैं उठा! रिवाल्वर उठा लिया। खोल उठाने का स्मरण ही न रहा। 22 जनवरी की घटना है। मैं केवल एक कोट और एक तहमद पहने था। बाल बढ़ रहे थे। नंगे सिर, पैर में जूता भी नहीं। ऐसी हालत में कहां जाऊं? अनेक विचार उठ रहे

थे।

इन्हीं विचारों में निमग्न यमुना-तट पर बड़ी देर तक घूमता रहा। ध्यान आया कि धर्मशाला चलकर ताला तोड़ कर सामान निकालूं। सोचा कि धर्मशाला जाने से गोली चलेगी, व्यर्थ में खून होगा। अभी ठीक नहीं। अकेले बदला लेना उचित नहीं। और कुछ साथियों को लेकर फिर बदला लिया जाएगा। मेरे एक साधारण मित्र प्रयाग में रहते थे। उनके पास जाकर बड़ी मुश्किल से एक चादर ली और रेल से लखनऊ आया। लखनऊ आकर बाल बनवाये। धोती-जूता खरीदे, क्योंकि रुपये मेरे पास थे। रुपये न भी होते तो भी मैं सदैव चालीस-पचास रुपये की सोने की अंगूठी पहने रहता था, उसे काम ले सकता था। वहां से आकर अन्य सदस्यों से मिलकर सब विवरण कह सुनाया। कुछ दिन जंगल में रहा। इच्छा थी कि संन्यासी हो जाऊं। संसार कुछ नहीं। बाद को फिर माता जी के पास गया। उन्हें सब कुछ सुनाया। उन्होंने मुझे ग्वालियर जाने का आदेश दिया। थोड़े दिनों में माता-पिता सभी दादीजी के भाई के यहां आ गये। मैं भी वहां पहुंच गया।

मैं हर वक्त यही विचार किया करता मुझे बदला अवश्य लेना चाहिए। एक दिन प्रतिज्ञा करके रिवाल्वर लेकर शत्रु की हत्या करने की इच्छा में गया भी, किन्तु सफलता न मिली। इसी प्रकार की उधेड़बुन मुझे ज्वर आने लगा। कई महीनों तक बीमार रहा। माताजी मेरे विचारों को समझ गई। माताजी ने बड़ी सान्त्वना दी। कहने लगीं कि, "प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी हत्या की चेष्टा करने वालों को जान से न मारोगे।" मैंने प्रतिज्ञा करने में आनाकानी की, तो वह कहने लगीं कि "मैं मातृऋण के बदले में प्रतिज्ञा कराती हूं, क्या जवाब है ?" मैंने कहा—"मैं उनसे बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं।" माताजी ने मुझे बाध्य कर मेरी प्रतिज्ञा भंग करवाई। अपनी बात पक्की रक्खी। मुझे ही सिर नीचा करना पड़ा। उस दिन से मेरा ज्वर कम होने लगा और मैं अच्छा हो गया।

पलायनावस्था

मैं ग्राम में ग्रामवासियों की भांति उसी प्रकार के कपड़े पहनकर रहने लगा। खेती भी करने लगा। देखने वाले अधिक से अधिक इतना समझ सकते थे कि मैं शहर में रहा हूं, सम्भव है कुछ पढ़ा भी होऊं। खेती के कामों में मैंने विशेष ध्यान दिया। शरीर तो हृष्ट-पुष्ट था ही, थोड़े ही दिनों में अच्छा खासा किसान बन गया। उस कठोर भूमि में खेती

करना कोई सरल काम नहीं। बबूल, नीम के अतिरिक्त कोई एक-दो आम के वृक्ष कहीं भले ही दिखाई दे जाएं। बाकी वह नितान्त मरुभूमि है। खेत में जाता था। थोड़ी देर में ही झरबेरी के कांटों में पैर भर जाते। पहले-पहल तो बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ। कुछ समय पश्चात् अभ्यास हो गया। जितना खेत उस देश का एक बलिष्ठ पुरुष दिन-भर में जोत सकता था, उतना मैं भी जोत लेता था। मेरा चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया। थोड़े दिनों के लिए मैं शाहजहांपुर की ओर घूमने आया तो कुछ लोग मुझे पहचान भी न सके! मैं रात को शाहजहांपुर पहुंचा। गाड़ी छूट गई। दिन के समय पैदल जा रहा था कि एक पुलिस वाले ने पहचान लिया। वह और पुलिस वालों को लेने के लिए गया। मैं भागा, पहले दिन का थका हुआ था। लगभग बीस मील पहले दिन पैदल चला था। उस दिन भी पैंतीस मील पैदल चलना पड़ा!

मेरे माता-पिता ने सहायता की। मेरा समय अच्छी प्रकार व्यतीत हो गया। माताजी की पूंजी तो मैंने नष्ट कर दी। पिताजी से सरकार की ओर से कहा गया कि लड़के की गिरफ्तारीके वारन्ट की पूर्ति के लिए लड़के का हिस्सा, जो उसके दादा की जायदाद होगी, नीलाम किया जाएगा। पिताजी घबराकर दो हजार रुपये का मकान आठ सौ में तथा दूसरी चीजें भी थोड़े दामों में बेचकर शाहजहांपुर छोड़कर भाग गए। दो बहनों का विवाह हुआ। जो कुछ रहा-बचा था, वह भी व्यय हो गया। माता-पिता की हालत फिर निर्धनों-जैसी हो गई। महीनों चनों पर ही समय काटना पड़ा। दो-चार रुपये जो मित्रों तथा सहायकों से मिल जाते थे, उन्हीं पर ही गुजर होता था। पहनने के कपड़े तक न थे। विवश हो रिवाल्वर तथा बन्दूकें बेची, तब दिन कटे। किसी से कुछ कह भी न सकते थे और गिरफ्तारी के भय के कारण कोई व्यवस्था या नौकरी भी न कर सकते थे।

उसी अवस्था में मुझे व्यवसाय करने की सूझी। मैंने अपने सहपाठी तथा मित्र श्रीयुत सुशीलचन्द्र सेन, जिनका देहान्त हो चुका था, की स्मृति में बंगला भाषा का अध्ययन किया। मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ तो मैंने उसका नाम सुशीलचन्द्र रखा। मैंने विचारा कि एक पुस्तकमाला निकालूं। बंगला पुस्तक **'निहिलिस्ट रहस्य'** का अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार अनुवाद किया, उसका स्मरण कर कई बार हंसी आ जाती है। कई बैल, गाय तथा भैंस लेकर ऊसर में चराने जाया करता था।

खाली बैठा रहना पड़ता था, अतएव कापी-पेन्सिल साथ ले जाता और पुस्तक का अनुवाद किया करता था। पशु जब कहीं दूर निकल जाते तब अनुवाद छोड़ लाठी लेकर उन्हें हकारने जाया करता था। कुछ समय के लिए एक साधु की कुटी पर जाकर रहा। वहां अधिक समय अनुवाद करने में व्यतीत करता था। खाने के लिए आटा ले जाता था। चार-पांच दिन के लिए इकट्ठा आटा रखता था। भोजन स्वयं पका लेता था। जब पुस्तक ठीक हो गई, तो **'सुशील माला'** के नाम से ग्रन्थमाला निकाली। पुस्तक का नाम **'बोलशेविकों की करतूत'** रखा। दूसरी पुस्तक **'मन की लहर'** छपवाई। इस व्यवसाय में लगभग पांच सौ रुपये की हानि हुई। जब राजकीय घोषणा हुई और राजनैतिक कैदी छोड़े गए, तब शाहजहांपुर आकर कोई व्यवसाय करने का विचार हुआ, ताकि माता-पिता की कुछ सेवा हो सके। विचार किया करता था कि इस जीवन में अब फिर कभी आजादी से शाहजहांपुर में विचरण न कर सकूंगा, पर परमात्मा की लीला अपार है। वे दिन आए। मैं पुनः शाहजहांपुर का निवासी हुआ।

पण्डित गेंदालाल दीक्षित

आपका जन्म यमुना-तट पर बटेश्वर के निकट 'मई' ग्राम में हुआ था। आपने मैट्रिक्यूलेशन (दसवां) दर्जा अंग्रेजी का पास किया था। आप जब औरैया जिला इटावा में डी० ए० वी० स्कूल में टीचर थे, तब आपने **'शिवाजी समिति'** की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था शिवाजी की भांति दल बना कर लूट मार करवाना, उसमें से चौथ लेकर हथियार खरीदना और उस दल में बांटना। इसकी सफलता के लिए आप रियासत से हथियार ला रहे थे जो, कुछ नवयुवकों की असावधानी के कारण आगरा में स्टेशन के निकट पकड़ लिए गए थे। आप बड़े वीर तथा उत्साही थे। शान्त बैठना जानते ही न थे। नवयुवकों को सदैव कुछ-न-कुछ उपदेश देते रहते थे। एक-एक सप्ताह तक बूट तथा वर्दी न उतारते थे। जब आप ब्रह्मचारी जी के पास सहायता लेने गए, तो दुर्भाग्यवश गिरफ्तार कर लिए गए। ब्रह्मचारी के दल ने अंग्रेजी राज्य में कई डाके डाले थे। डाके डाल कर ये लोग चम्बल के बीहड़ों में छिप जाते थे। सरकारी राज्य की ओर से ग्वालियर महाराज को लिखा गया। इस दल के पकड़ने का प्रबन्ध किया गया। सरकार ने तो हिन्दुस्तानी फौज भी भेजी थी, जो आगरा जिले में चम्बल के किनारे बहुत दिनों तक

पड़ी रही। पुलिस सवार तैनात किए, फिर भी ये लोग भयभीत न हुए। विश्वासघात से पकड़े गए। इन्हीं का एक आदमी पुलिस ने मिला लिया। डाका डालने के लिए दूर स्थान निश्चय किया गया, जहां तक जाने के लिए एक पड़ाव देना पड़ता था। चलते-चलते सब थक गए। पड़ाव दिया गया। जों आदमी पुलिस से मिला हुआ था, उससे भोजन लाने को कहा, क्योंकि उसके किसी सम्बन्धी का मकान निकट था। वह पूड़ी बनवा कर लाया। सब पूड़ी खाने लग गए। ब्रह्मचारी जी जो सदैव अपने हाथ से बनाकर भोजन करते थे या आलू अथवा घुइयां भूनकर खा लेते थे, उन्होंने भी उस दिन पूड़ी खाना स्वीकार किया। सब भूखे तो थे ही, खाने लगे। ब्रह्मचारी जी ने भी एक पूड़ी ही खाई। उनकी जबान ऐंठने लगी और जो अधिक खा गए थे, वे गिर गए। पूरी लाने वाला पानी लाने के बहाने चल दिया। पूड़ियों में विष मिला हुआ था। ब्रह्मचारी जी ने बन्दूक उठाकर पूरी लाने वाले पर गोली चलाई। ब्रह्मचारी जी का गोली चलाना था कि चारों ओर से गोली चलने लगी। पुलिस छिपी हुई थी। गोली चलने से ब्रह्मचारी जी के कई गोली लगीं। तमाम शरीर घायल हो गया। पं० गेंदालालजी की आंख में एक छर्रा लगा। बाईं आंख जाती रही। कुछ आदमी जहर के कारण मरे, कुछ गोली से मारे गए, इस प्रकार 80 आदमियों में से 25-30 जान से मर गए। सब पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिए गए। किले में हम लोग जब पण्डित से मिले, तब चिट्ठी भेजकर उन्होंने हमको सब हाल बताया। एक दिन किले में हम लोगों पर भी सन्देह हो गया था, बड़ी कठिनता से एक अधिकारी की सहायता से हम लोग निकल सके।

जब मैनपुरी षड्यन्त्र का अभियोग चला, पण्डित गेन्दालालजी को सरकार ने ग्वालियर राज्य से मंगाया। ग्वालियर के किले का जलवायु बड़ा ही हानिकारक था। पण्डितजी को क्षय रोग हो गया था। मैनपुरी स्टेशन से जेल जाते समय ग्यारह बार रास्ते में बैठ कर जेल पहुंचे। पुलिस ने जब हाल पूछा तो उन्होंने कहा—"बालकों को क्यों गिरफ्तार किया है ? मैं हाल बताऊंगा।" पुलिस को विश्वास हो गया। आपको जेल से निकालकर दूसरे सरकारी गवाहों के निकट रख दिया। वहां पर सब विवरण जान रात्रि के समय एक और सरकारी गवाह को लेकर पण्डित जी भाग खड़े हुए। भागकर एक गांव में एक कोठरी में ठहरे। साथी कुछ काम के लिए बाजार गया और फिर लौटकर न आया

बाहर से कोठरी की जंजीर बन्द कर गया था। पण्डितजी उसी कोठरी में तीन दिन बिना अन्न-जल बन्द रहे। समझे कि साथी किसी आपत्ति में फंस गया होगा, अन्त में किसी प्रकार जंजीर खुलवाई। रुपये वह सब साथ ले गया था। पास एक पैसा न था। कोटा से पैदल आगरा गए। किसी प्रकार अपने घर पहुंचे। बहुत बीमार थे। **पिता ने यह समझकर कि घर वालों पर आपत्ति न आए, पुलिस को सूचना देनी चाही। पण्डितजी ने पिता से बड़ी विनय-प्रार्थना की और दो-तीन दिन में घर छोड़ दिया। हम लोगों की बहुत खोज की। किसी का कुछ पता न पा दिल्ली में एक प्याऊ पर पानी पिलाने की नौकरी कर ली।** अवस्था दिनों-दिन बिगड़ रही थी। रोग भीषण रूप धारण कर रहा था। छोटे भाई तथा पत्नी को बुलाया। भाई किंकर्त्तव्यविमूढ़! वह क्या कर सकता था? सरकारी अस्पताल में भर्ती कराने ले गया। पण्डितजी की धर्मपत्नी को दूसरे स्थान में भेजकर जब वह अस्पताल आया, तो जो देखा उसे लिखते हुए लेखनी कम्पायमान होती है! पण्डितजी शरीर त्याग चुके थे। केवल उनका मृत शरीर-मात्र ही पड़ा हुआ था। स्वदेश की कार्य सिद्धि में पं० गेन्दालालजी दीक्षित ने जिस नि:सहाय अवस्था में अन्तिम बलिदान दिया, उसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। पण्डितजी की प्रबल इच्छा थी कि उनकी मृत्यु गोली लगकर हो। भारतवर्ष की एक महान् आत्मा विलीन हो गई और देश में किसी ने जाना भी नहीं! आपकी विस्तृत जीवनी '**प्रभा**' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है। मैनपुरी षड्यन्त्र में विशेषताएं ये हुईं कि नेताओं में से केवल दो व्यक्ति पुलिस के हाथ आए, जिनमें **गेन्दालाल दीक्षित** एक सरकारी गवाह को लेकर भाग गए श्रीयुत **शिवकृष्ण** जेल से भाग गए, फिर हाथ न आए। छ: मास के पश्चात् जिन्हें सजा हुई भी वे भी राजकीय घोषणा से मुक्त कर दिए गए। खुफिया पुलिस विभाग का क्रोध पूर्णतय शान्त न हो सका और उनकी बदनामी भी इस केस में बहुत हुई।

तृतीय खण्ड

स्वतन्त्र जीवन

राजकीय घोषणा के पश्चात् जब मैं शाहजहांपुर आया तो शहर की अद्‌भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस न करता था! जिसके पास मैं जाकर खड़ा हो जाता था, वह नमस्ते कर चल देता था। पुलिस का प्रकोप था। प्रत्येक समय वह छाया की भांति पीछे-पीछे फिरा करती थी। इस प्रकार का जीवन कब तक व्यतीत किया जाए? मैंने कपड़ा बुनने का काम सीखना आरम्भ किया। जुलाहे बड़ा कष्ट देते थे। कोई काम सिखाना नहीं चाहता था। बड़ी कठिनता से मैंने कुछ काम सीखा। उसी समय एक कारखाने में मैनेजरी का स्थान खाली हुआ। मैंने उस स्थान के लिए प्रयत्न किया। मुझसे पांच सौ रुपये की जमानत मांगी गई। मेरी दशा बड़ी शोचनीय थी। तीन-तीन दिवस तक भोजन प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की थी किसी से कुछ सहायता न लूंगा। पिताजी से बिना कुछ कहे मैं चला आया था। मैं पांच सौ रुपए कहां से लाता? मैंने दो-एक मित्रों से केवल दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया! मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। संसार अंधकारमय दिखाई देता था। पर बाद को एक मित्र की कृपा से नौकरी मिल गई। अब अवस्था कुछ सुधरी। मैं भी सभ्य पुरुषों की भांति समय व्यतीत करने लगा। मेरे पास भी चार पैसे हो गए। वे ही मित्र, जिनसे मैंने दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की थी, अब मेरे पास चार-चार हजार रुपयों की थैली अपनी बन्दूक, लाइसेन्स इत्यादि सब डाल जाते थे कि मेरे यहां उनकी वस्तुएं सुरक्षित रहेंगी। समय के इस फेर को देखकर मुझे हंसी आती थी।

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हुआ। दो-चार पुरुषों से भेंट हुई, जिनको पहले मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उन लोगों ने मेरी पलायनावस्था के सम्बन्ध में कुछ समाचार सुने थे। मुझसे मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरी लिखी हुई पुस्तकें भी देखी। इस समय मैं तीसरी पुस्तक '**कैथराइन**' लिख चुका था। मुझे पुस्तकों के व्यवसाय में बहुत घाटा हो चुका था। मैंने माला का प्रकाशन स्थगित कर दिया। 'कैथेराइन' एक पुस्तक प्रकाशक को दे दी। उन्होंने बड़ी कृपा कर उस पुस्तक को थोड़े से हेर-फेर के साथ प्रकाशित कर दिया। 'कैथराइन' को देखकर

मेरे इष्ट मित्रों को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुझे पुस्तक लिखते रहने के लिए बड़ा उत्साहित किया। मैंने '**स्वदेशी रंग**' नामक एक और पुस्तक लिखकर एक पुस्तक-प्रकाशक को दी। वह भी प्रकाशित हो गई।

बड़े परिश्रम के साथ मैंने एक पुस्तक '**क्रान्तिकारी जीवन**' लिखी। 'क्रान्तिकारी जीवन' को कई पुस्तक प्रकाशकों ने देखा, पर किसी का साहस न हो सका कि उसको प्रकाशित करे! आगरा, कानपुर, कलकत्ता इत्यादि कई स्थानों में घूमकर पुस्तक मेरे पास लौट आई। कई मासिक पत्रिकाओं में '**राम**' तथा '**अज्ञात**' नाम से मेरे लेख प्रकाशित हुआ करते थे। लोग बड़े चाव से उन लेखों का पाठ करते थे। मैंने किसी स्थान पर लेखन शैली का नियमपूर्वक अध्ययन न किया था। बैठे-बैठे खाली समय में ही कुछ लिखा करता और प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था। अधिकतर बंगला तथा अंग्रेजी की पुस्तकों में अनुवाद करने का ही विचार था। थोड़े समय के पश्चात् श्रीयुत अरविन्द घोष की बंगला पुस्तक '**योगिक साधन**' का अनुवाद किया। दो-एक पुस्तक-प्रकाशकों को दिखाया पर वे अति अल्प पारितोषिक देकर पुस्तक लेना चाहते थे। आजकल के समय में हिन्दी के लेखकों तथा अनुवादकों की अधिकता के कारण पुस्तक प्रकाशकों को भी बड़ा अभिमान हो गया है। बड़ी कठिनता से बनारस प्रकाशक ने 'योगिक साधन' प्रकाशित करने का वचन दिया। पर थोड़े दिनों में वह स्वयं ही अपने साहित्य मन्दिर में ताला डालकर कहीं पधार गए! पुस्तक का अब तक कोई पता न लगा। पुस्तक अति उत्तम थी। प्रकाशित हो जाने से हिन्दी साहित्य-सेवियों को अच्छा लाभ होता। मेरे पास जो 'बोलशेविक करतूत' तथा 'मन की लहर' की प्रतियां बची थीं, मैंने लागत से भी कम मूल्य पर कलकत्ता के एक व्यक्ति श्रीयुत दीनानाथ सगतिया को दे दीं। बहुत थोड़ी पुस्तकें मैंने बेची थी, दीनानाथ महाशय पुस्तकें हड़प कर गए। मैंने नोटिस दिया। नालिश की। लगभग चार सौ रुपए की डिग्री भी हुई। किन्तु दीनानाथ महाशय का कहीं पता न चला। वह कलकत्ता छोड़कर पटना गए। पटना में कई गरीबों का रुपया मारकर कहीं अन्तर्धान हो गए। अनुभवहीनता से इस प्रकार ठोकरें खानी पड़ीं। कोई पथ प्रदर्शक तथा सहायक नहीं था, जिससे परामर्श करता। व्यर्थ के उद्योग धन्धों तथा स्वतन्त्र कार्यों में शक्ति का व्यय करता रहा।

पुनः संगठन

जिन महानुभावों को मैं पूजनीय दृष्टि से देखता था, उन्हीं ने अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं क्रान्तिकारी दल का पुनःसंगठन करूं। गत जीवन के अनुभव से मेरा हृदय अत्यन्त दुखित था। मेरा साहस न देखकर इन लोगों ने बहुत उत्साहित किया और कहा कि हम आपको केवल निरीक्षण का कार्य देंगे, बाकी सब कार्य स्वयं करेंगे। कुछ मनुष्य हमने पहले जुटा लिये हैं, धन की कमी न होगी, आदि। मान्य पुरुषों की प्रवृत्ति देखकर मैंने भी स्वीकृति दे दी। मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र थे, मैंने दिए। जो दल उन्होंने एकत्रित किया था, उसके नेता से मुझे मिलाया। उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की। वह एक अशिक्षित ग्रामीण पुरुष था। मेरी समझ में आ गया कि बदमाशों का या स्वार्थी जनों का कोई संगठन है। मुझसे उस दल के नेता ने दल का कार्य निरीक्षण करने की प्रार्थना की। दल में कई फौज से आए हुए लड़ाई पर से वापस किए गए व्यक्ति भी थे। मुझे इस प्रकार के व्यक्तियों से कभी कोई काम न पड़ा था। मैं दो-एक महानुभावों को साथ ले इन लोगों का कार्य देखने के लिए गया।

थोड़े दिनों बाद इस दल के नेता महाशय वेश्या को भी ले आए। उसे रिवाल्वर दिखाया कि यदि कहीं गई तो गोली मार दी जाएगी। यह समाचार सुन उसी दल के दूसरे सदस्य ने बड़ा क्रोध प्रकाशित किया और मेरे पास खबर भेजने का प्रबन्ध किया। उसी समय एक दूसरा आदमी पकड़ा गया, जो नेता महाशय को जानता था। नेता महाशय रिवाल्वर तथा कुछ सोने के आभूषणों-सहित गिरफ्तार हो गए। उनकी वीरता की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, जो इस प्रकार प्रकट हुई कि कई आदमियों के नाम पुलिस को बताए और इकबाल कर लिया। लगभग तीस-चालीस आदमी पकड़े गए।

एक दूसरा व्यक्ति जो बहुत वीर था। पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई थी। एक दिन पुलिस कप्तान ने सवार तथा तीस-चालीस बन्दूक वाले सिपाही लेकर उसके घर में उसे घेर लिया। उसने छत पर चढ़कर दोनाली कारतूसी बन्दूक से लगभग तीन सौ फायर किए। बन्दूक गरम होकर गल गई। पुलिस वाले समझे कि घर में एक आदमी हैं। सब पुलिस वाले छिपकर आड़ में से सुबह की प्रतीक्षा करने लगे। उसने मौका पाया, मकान के पीछे से कूद पड़ा। एक सिपाही ने देख लिया।

उसने सिपाही की नाक पर रिवाल्वर का कुन्दा मारा। सिपाही चिल्लाया। सिपाही के चिल्लाते ही मकान में से एक फायर हुआ। पुलिस वाले समझे मकान में ही है। सिपाही को धोखा हुआ होगा। बस, वह जंगल में निकल गया। अपनी स्त्री को एक टोपीदार बन्दूक दे आया था कि यदि चिल्लाहट हो तो एक फायर कर देना। ऐसा ही हुआ। वह निकल गया। जंगल में जाकर एक दूसरे दल से मिला। जंगल में भी एक समय पुलिस कप्तान से सामना हो गया। गोली चली। उसके भी पैर में छर्रे लगे थे। अब यह बड़े साहसी हो गए थे। समझ गए थे कि पुलिसवाले किस प्रकार समय पर आड़ में छिप जाते हैं। इन लोगों का दल छिन्न-भिन्न हो गया था। अतः उन्होंने मेरे पास आश्रय लेना चाहा। मैंने बड़ी कठिनता से अपना पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् ये जंगल में जाकर दूसरे दल से मिल गए। वहां पर दुराचार के कारण जंगल के दल के नेता ने इन्हें गोली से मार दिया। उस नेता को भी समय पाकर उसके साथी ने गोली से मार दिया। इस प्रकार सब दल छिन्न-भिन्न हो गया। जो पकड़े गए उन पर कई डकैतियां चलीं। किसी को तीस साल, किसी को पचास साल, किसी को बीस साल की सजाएं हुईं। एक बेचारा, जिसका किसी डकैती से कोई सम्बन्ध न था, केवल शत्रुता के कारण फंसा दिया गया। उसे फांसी हो गई और जो सब प्रकार डकैतियों में सम्मिलित था, जिसके पास डकैती का माल तथा कुछ हथियार पाए गए, पुलिस से गोली भी चली, उसे पहले फांसी की सजा की आज्ञा हुई, पर पैरवी अच्छी हुई, अतएव हाईकोर्ट से फांसी की सजा माफ हो गई, केवल पांच वर्ष की सजा रह गई। जेल वालों से मिलकर उसने डकैतियों में शिनाख्त न होने दी थी। इस प्रकार इस दल की समाप्ति हुई। दैवयोग से हमारे अस्त्र बच गए। केवल एक ही रिवाल्वर पकड़ा गया।

नोट बनाना

इसी बीच मेरे एक मित्र की एक नोट बनाने वाले महाशय से भेंट हुई। उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएं बांधी। बड़ी लम्बी-लम्बी स्कीम बांधने के पश्चात् मुझसे कहा कि एक नोट बनाने वाले से भेंट हुई है। बड़ा दक्ष पुरुष है। मुझे भी बना हुआ नोट देखने की बड़ी उत्कट इच्छा थी। मैंने उन सज्जन के दर्शन की इच्छा प्रकट की। जब उक्त नोट बनाने वाले महाशय मुझे मिले तो बड़े कौतूहलोत्पादक बाते कीं। मैंने कहा कि मैं स्थान तथा आर्थिक सहायता दूंगा, नोट बनाओ। जिस प्रकार उन्होंने

मुझसे कहा, मैंने सब प्रबन्ध कर दिया, किन्तु मैंने कह दिया कि नोट बनाते समय मैं वहां उपस्थित रहूंगा, मुझे बताना कुछ मत, पर मैं नोट बनाने की रीति अवश्य देखना चाहता हूं। पहले-पहल उन्होंने दस रुपये का नोट बनाने का निश्चय किया। मुझसे एक दस रुपए का नया साफ नोट मंगाया। नौ रुपए दवा खरीदने के बहाने से ले गए। रात्रि में नोट बनाने का प्रबन्ध हुआ। दो शीशे लाए। कुछ कागज भी लाए। दो-तीन शीशियों में कुछ दवाई थी। दवाइयों को मिलाकर एक प्लेट में सादे कागज पानी में भिगोए। मैं जो साफ नोट लाया था, उस पर एक सादा कागज लगाकर दोनों को दूसरी दवा डालकर धोया। फिर दो सादे कागजों में लपेट एक पुड़िया-सी बनाई और अपने एक साथी को दी कि उसे आग पर गरम कर लाए। आग वहां से कुछ दूर पर जलती थी। कुछ समय तक वह आग पर गरम करता रहा और पुड़िया लाकर वापस दे दी। नोट बनाने वाले ने पुड़िया खोलकर दोनों शीशों में दबाकर शीशों को दवा से धोया और फीते से शीशों को बांधकर रख दिया और कहा कि दो घण्टे में नोट बन जाएगा। शीशे रख दिए। बातचीत होने लगी। कहने लगा, 'इस प्रयोग में बड़ा व्यय होता है। छोटे-छोटे नोट बनाने से कोई लाभ नहीं। बड़े नोट बनाने चाहिएं, जिससे पर्याप्त धन की प्राप्ति हो।' इस प्रकार मुझे भी सिखा देने का वचन दिया। मुझे कुछ कार्य था। मैं जाने लगा तो वह भी चला गया। दो घण्टे के बाद आने का निश्चय हुआ।

मैं विचारने लगा कि किस प्रकार एक नोट के ऊपर दूसरा सादा कागज रखने से नोट बन जाएगा। मैंने प्रेस का काम सीखा था। थोड़ी बहुत फोटोग्राफी भी जानता था। साइन्स (विज्ञान) का भी अध्ययन किया था। कुछ समझ में न आया कि नोट सीधा कैसे छपेगा। सबसे बड़ी बात यह थी कि नम्बर कैसे छपेंगे। मुझे बड़ा भारी सन्देह हुआ। दो घण्टे बाद मैं जब गया तो रिवाल्वर भरकर जेब में डालकर ले गया। यथासमय महाशय आये। उन्होंने शीशे खोलकर कागज निकालकर उन्हें फिर एक दवा से धोया। अब दोनों कागज खोले। एक मेरा लाया हुआ नोट और दूसरा एक दस रुपये का नोट उसी के ऊपर से उतारकर सुखाया। कहा— 'कितना साँफ नोट है!' मैंने हाथ में लेकर देखा। दोनों नोटों के नम्बर मिलाये। नम्बर नितान्त भिन्न-भिन्न थे। मैंने जेब से रिवाल्वर निकाल नोट बनाने वाले महाशय की छाती पर रख कर कहा 'बदमाश! इस

तरह ठगता फिरता है ?' वह कांपकर गिर पड़ा ! मैंने उसको उसकी मूर्खता समझाई कि यह ढोंग ग्रामवासियों के सामने चल सकता है, अनजान पढ़े-लिखे भी धोखे में आ सकते हैं। किन्तु तू मुझे धोखा देने आया है ! अन्त में मैंने उससे प्रतिज्ञा-पत्र लिखाकर, उस पर उसके हाथों की दसों अंगुलियों के निशान लगवाये कि वह ऐसा काम फिर न करेगा। दसों अंगुलियों के निशान देने में उसने कुछ ढील की। मैंने रिवाल्वर उठाकर कहा कि गोली चलती है, उसने तुरन्त दसों अंगुलियों के निशान बना दिये। बुरी तरह कांप रहा था। मेरे उन्नीस रुपये खर्च हो चुके थे मैंने दोनों नोट रख लिए और शीशे, दवाएं इत्यादि सब छीनलीं कि मित्रों को तमाशा दिखाऊंगा। तत्पश्चात् उन महाशय को विदा किया। उसने किया यह था कि जब अपने साथी को आग पर गरम करने के लिए कागज की पुड़िया दी थी, उसी समय वह साथी सादे कागज की पुड़िया बदलकर दूसरी पुड़िया ले आया जिसमें दोनों नोट थे। इस प्रकार नोट बन गया। इस प्रकार का एक बड़ा भारी दल है, जो सारे भारतवर्ष में ठगी का काम करके हजारों रुपये पैदा करता है। मैं एक सज्जन को जानता हूं जिन्होंने इसी प्रकार पचास हजार से अधिक रुपए पैदा कर लिए। होता यह है कि ये लोग अपने एजेण्ट रखते हैं। वे एजेण्ट साधारण पुरुषों के पास जाकर नोट बनाने की कथा कहते हैं। आता धन किसे बुरा लगता है ? वे नोट बनवाते हैं। इस प्रकार पहले दस का नोट बनाकर दिया, वे बाजार में बेच आये। सौ रुपये का बनाकर दिया वह भी बाजार में चलाया, और चल क्यों न जाये ? इस प्रकार के सब नोट असली होते हैं। वे तो केवल चाल से रख दिये जाते हैं। इसके बाद कहा कि हजार या पांच सौ का नोट लाओ तो कुछ धन भी मिले। जैसे-तैसे करके बेचारा एक हजार का नोट लाया। सादा कागज रखकर शीशे में बान्ध दिया। हजार का नोट जेब में रखा और चम्पत हुये ! नोट के मालिक रास्ता देखते हैं, वहां नोट बनाने वालों का पता ही नहीं ! अन्त में विवश हो शीशों को खोला जाता है, तो दो सादे कागजों के अलावा कुछ नहीं मिलता वे अपने सिर पर हाथ मारकर रह जाते हैं। इस डर से कि यदि पुलिस को मालूम हो गया तो और लेने के देने पड़ेंगे, किसी से कुछ कह भी नहीं सकते। कलेजा मसोसकर रह जाते हैं। पुलिस ने इस प्रकार के कुछ अभियुक्तों को गिरफ्तार भी किया, किन्तु ये लोग पुलिस को नियमपूर्वक चौथ देते रहते हैं और इस कारण बचे रहते हैं !

चालबाजी

कई महानुभावों ने गुप्त समिति नियमादि बनाकर मुझे दिखाये। उनमें एक नियम यह भी था कि जो व्यक्ति समिति का कार्य करें, उन्हें समिति की ओर से कुछ मासिक दिया जाये। मैंने इस नियम को अनिवार्य रूप में मानना अस्वीकार किया। मैं यहां तक सहमत था कि जो व्यक्ति सर्व-प्रकारेण समिति के कार्य में अपना समय व्यतीत करें, उनको केवल गुजारा-मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है। जो लोग किसी व्यवस्था को करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का मासिक भत्ता देना उचित न होगा। जिन्हें समिति के कोष में से कुछ दिया जाये, उनको भी कुछ व्यवसाय करने का प्रबन्ध करना उचित है, ताकि ये लोग सर्वथा समिति की सहायता पर निर्भर रहकर निरे भाड़े के टट्टू न बन जाएं। भाड़े के टट्टुओं से समिति का कार्य लेना, जिसमें कतिपय मनुष्यों के प्राणों का उत्तरदायित्व हो और थोड़ा-सा भेद खुलने से ही बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है, उचित नहीं है। तत्पश्चात् उन महानुभावों की सम्मति हुई कि एक निश्चित कोष समिति के सदस्यों को देने के निमित्त स्थापित किया जाये, जिसकी आय का ब्यौरा इस प्रकार हो कि डकैतियों से जितना धन प्राप्त हो उसका आधा समिति के कार्यों में व्यय किया जाए और आधा समिति के सदस्यों को बराबर-बराबर बांट दिया जाए। इस प्रकार के परामर्श से मैं सहमत न हो सका और मैंने इस प्रकार की गुप्त समिति में, कि जिसका एक उद्देश्य पेट-पूर्ति हो, योग देने से इन्कार कर दिया। जब मेरी इस प्रकार की दृष्टि देखी तो उन महानुभावों ने आपस में षड्यन्त्र रचा।

जब मैंने उन महानुभावों के परामर्श तथा नियमादि को स्वीकार न किया तो वे चुप हो गए। मैं भी कुछ समझ न सका कि जो लोग मुझमें इतनी श्रद्धा रखते थे, जिन्होंने कई प्रकार की आशाएं देखकर मुझसे क्रान्तिकारी दल का पुनः संगठन करने की प्रार्थनाएं की थीं, अनेक प्रकार की उम्मीदें बंधाई थीं, सब कार्य स्वयं करने के वचन दिये थे, वे लोग ही मुझसे इस प्रकार के नियम बनाने की मांग करने लगे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रथम प्रयत्न में, जिस समय मैं मैनपुरी षड्यन्त्र के सदस्यों के सहित कार्य करता था, उस समय हममें से कोई भी अपने व्यक्तिगत (प्राइवेट) खर्च में समिति का धन व्यय करना पूर्ण पाप समझता था। जहां तक हो सकता अपने खर्च के लिए माता-पिता से कुछ लाकर

प्रत्येक सदस्य समिति के कार्यों में धन व्यय किया करता था। इस कारण मेरा साहस इस प्रकार के नियमों में सहमत होने का न हो सका। मैंने विचार किया कि यदि कोई समय आया और किसी प्रकार अधिक धन प्राप्त हुआ, तो कुछ सदस्य ऐसे स्वार्थी हो सकते हैं, जो अधिक धन लेने की इच्छा करें, और आपस में वैमनस्य बढ़े। उसके परिणाम बड़े भयंकर हो सकते हैं। अत: इस प्रकार के कार्य में योग देना मैंने उचित न समझा।

मेरी यह अवस्था देख इन लोगों ने आपस में षड्यन्त्र रचा, कि जिस प्रकार मैं कहूं वे नियम स्वीकार कर लें और विश्वास दिलाकर जितने अस्त्र-शस्त्र मेरे पास हों, उनको मुझसे लेकर सब पर अपना आधिपत्य जमा लें। यदि मैं अस्त्र-शस्त्र मागूं तो मुझसे युद्ध किया जाए, और आ पड़े तो मुझे कहीं ले जाकर जान से मार दिया जाये! तीन सज्जनों ने इस प्रकार का षड्यन्त्र रचा और मुझसे चालबाजी करनी चाही। दैवात् उनमें से एक सदस्य के मन में कुछ दया आ गई। उसने आकर मुझसे सब भेद कह दिया। मुझे सुनकर बड़ा खेद हुआ कि जिन व्यक्तियों को मैं पिता तुल्य मानकर श्रद्धा करता हूं, वे ही मेरे नाश करने के लिए इस प्रकार नीचता का कार्य करने को उद्यत हैं। मैं सम्हल गया। मैं उन लोगों से सतर्क रहने लगा कि पुन: प्रयाग-जैसी घटना न घटे। जिन महाशय ने मुझसे भेद कहा था, उनकी उत्कट इच्छा थी कि वह एक रिवाल्वर रखें और इच्छा-पूर्ति के लिए उन्होंने मेरा विश्वासपात्र बनने के कारण मुझसे भेद कहा था। मुझसे एक रिवाल्वर मांगा कि मैं उन्हें कुछ समय के लिए रिवाल्वर दे दूं। यदि मैं उन्हें रिवाल्वर दे देता तो वह उसे हजम कर जाते! मैं कर ही क्या सकता था? और अब रिवाल्वर इत्यादि पाना कोई सरल कार्य भी न था। बाद में बड़ी कठिनता से इन चालबाजियों से अपना पीछा छुड़ाया।

अब सब ओर से चित्त को हटाकर बड़े मनोयोग से नौकरी में समय व्यतीत करने लगा। कुछ रुपया इकट्ठा करने के विचार से, कुछ कमीशन इत्यादि का प्रबन्ध कर लेता था। इस प्रकार पिताजी का थोड़ा-सा भार बंटाया। सबसे छोटी बहन का विवाह नहीं हुआ था। पिताजी के सामर्थ्य के बाहर था कि उस बहन का विवाह किसी भले घर में कर सकते। मैंने रुपया जमा करके बहन का विवाह एक अच्छे जमींदार के यहां कर दिया। पिताजी का भार उतर गया। अब केवल माता, पिता, दादी तथा छोटे भाई थे, जिनके भोजन का प्रबन्ध होना अधिक कठिन

काम न था। अब माताजी की उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी विवाह कर लूं। कई अच्छे-अच्छे सम्बन्ध के सुयोग एकत्रित हुए। किन्तु मैं विचारता था कि जब तक पर्याप्त धन पास न हो, विवाह-बन्धन में फंसना ठीक नहीं। मैंने रेशमी कपड़ा बुनने का एक निजी कारखाना खोल दिया। बड़े मनोयोग तथा परिश्रम से कार्य किया। परमात्मा की दया से अच्छी सफलता हुई। एक-डेढ़ साल में ही मेरा कारखाना चमक गया। तीन-चार हजार की पूंजी में कार्य आरम्भ किया था। एक साल बाद सब खर्च निकालकर लगभग दो हजार रुपये का लाभ हुआ। मेरा उत्साह और भी बढ़ा। मैंने एक-दो व्यवसाय और भी प्रारम्भ किए। उसी समय मालूम हुआ कि संयुक्त-प्रान्त में क्रान्तिकारी दल का पुनः संगठन हो रहा है। कार्यारम्भ हो गया है। मैंने भी योग देन का वचन दिया, किन्तु उस समय मैं अपने व्यवसाय में बुरी तरह फंसा हुआ था। मैंने छः मास का समय लिया कि छः मास में मैं अपने व्यवसाय को अपने साझी को सौंप दूंगा, और अपने आपको उसमें से निकाल लूंगा, तब स्वतन्त्रतापूर्वक क्रान्तिकारी कार्य में योग दे सकूंगा। छः मास तक मैंने अपने कारखाने का सब काम साफ करके अपने साझी को सब काम समझा दिया, तत्पश्चात् अपने वचनानुसार कार्य में योग देने का उद्योग किया।

चतुर्थ खण्ड

बृहत् संगठन

यद्यपि मैं अपना निश्चय कर चुका था, कि अब इस प्रकार के कार्यों में कोई भाग न लूंगा, तथापि मुझे पुनः क्रान्तिकारी आन्दोलन में हाथ डालना पड़ा, जिसका कारण यह था कि मेरी तृष्णा न बुझी थी, मेरे दिल के अरमान न निकले थे। असहयोग आन्दोलन शिथिल हो चुका था। पूर्ण आशा थी कि जितने देश के नवयुवक इस आन्दोलन में भाग लेते थे, उनमें अधिकतर क्रान्तिकारी आन्दोलन में सहायता देंगे और पूरी लगन से काम करेंगे। जब कार्य आरम्भ हो गया और असहयोगियों को टटोला तो वे आन्दोलन से कहीं अधिक शिथिल हो चुके थे। उनकी आशाओं पर पानी फिर चुका था। निज की पूंजी समाप्त हो चुकी थी। घर में व्रत हो रहे थे। आगे की भी कोई विशेष आशा न थी। कांग्रेस में भी स्वराज्य दल का जोर हो गया था। जिनके पास कुछ धन तथा इष्ट मित्रों का संगठन था, वे कौंसिलों तथा असेम्बली के सदस्य बन गये। ऐसी अवस्था में यदि क्रान्तिकारी संगठनकर्त्ताओं के पास पर्याप्त धन होता तो वे असहयोगियों को हाथ में लेकर उनसे काम ले सकते थे। कितना भी सच्चा काम करने वाला हो, किन्तु पेट तो सबके हैं। दिनभर में थोड़ा-सा अन्न क्षुधा निवृत्ति के लिए मिलना परमावश्यक है। फिर शरीर ढकने की भी आवश्यकता होती है। अतएव कुछ प्रबन्ध ही ऐसा होना चाहिए, जिसमें नित की आवश्यकताएं पूरी हो जाएं। जितने धनी-मानी स्वदेश-प्रेमी थे उन्होंने असहयोग आन्दोलन में पूर्ण सहायता दी थी। फिर भी कुछ ऐसे कृपालु सज्जन थे, जो थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता देते थे। किन्तु प्रान्त-भर के प्रत्येक जिले में संगठन करने का विचार था। पुलिस की दृष्टि बचाने के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में साधारण नियमों को काम में लाते हुए कार्य करना बड़ा कठिन था। अनेक उद्योगों के पश्चात् कुछ भी सफलता न होती थी। दो-चार जिलों में संगठनकर्त्ता नियत किये गए थे, जिनको कुछ मासिक गुजारा दिया जाता था। पांच-दस महीने तक इस प्रकार कार्य चलता रहा। बाद को जो सहायक कुछ आर्थिक सहायता देते थे उन्होंने भी हाथ खींच लिया। अब हम लोगों की अवस्था बहुत खराब हो गई। सब कार्य-भार मेरे ही ऊपर आ चुका था। कोई भी किस

प्रकार की मदद न देता था। जहां-तहां से पृथक्-पृथक् जिलों में कार्य करने वाले मासिक व्यय की मांग कर रहे थे। कई मेरे पास आये भी। मैंने कुछ रुपया कर्ज लेकर उन लोगों को एक मास का खर्च दिया। कइयों पर कुछ कर्ज भी हो चुका था। मैं कर्ज न निपटा सका। एक केन्द्र के कार्यकर्त्ता को जब पर्याप्त धन न मिल सका, तो वह कार्य छोड़कर चले गये। मेरे पास क्या प्रबन्ध था, जो मैं उसकी उदर-पूर्ति कर सकता? अद्‌भुत समस्या थी! किसी तरह उन लोगों को समझाया।

थोड़े दिनों में क्रान्तिकारी पर्चे आये। सारे देश में निश्चित तिथि पर पर्चे बांटे गये। रंगून, बम्बई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता तथा बंगाल के मुख्य शहरों तथा संयुक्त प्रान्त के सभी मुख्य-मुख्य जिलों में पर्याप्त संख्या में पर्चों का वितरण हुआ। भारत सरकार बड़ी सशंक हुई कि ऐसी कौन-सी और इतनी बड़ी सुसंगठित समिति है, जो एक ही दिन में सारे भारतवर्ष में पर्चे बंट गये! उसी के बाद मैंने कार्यकारिणी की एक बैठक करके जो केन्द्र खाली हो गया था, उसके लिए एक महाशय को नियुक्त किया। केन्द्र में कुछ परिवर्तन भी हुआ, क्योंकि सरकार के पास संयुक्त प्रान्त के सम्बन्ध में बहुत-सी सूचनाएं पहुंच चुकी थीं। भविष्य की कार्य-प्रणाली का निर्माण किया गया।

कार्यकर्त्ताओं की दुर्दशा

इस समय समिति के सदस्यों की बड़ी दुर्दशा थी। चने मिलना भी कठिन था। सब पर कुछ न कुछ कर्ज हो गया था। किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे। कुछ विद्यार्थी बनकर धर्मक्षेत्रों तक में भोजन कर आते थे। चार-पांच ने अपने-अपने केन्द्र त्याग दिये। पांच सौ से अधिक रुपये मैं कर्ज लेकर व्यय कर चुका था। यह दुर्दशा देख मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मुझसे भी भर पेट भोजन न किया जाता था। सहायता के लिए कुछ सहानुभूति रखने वालों का द्वार खटखटाया, किन्तु कोरा उत्तर मिला। किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। कुछ समझ में न आता था। कोमल-हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते, ''पण्डितजी, अब क्या करें?'' मैं उनके सूखे-सूखे मुख देख बहुधा रो पड़ता कि स्वदेश-सेवा का व्रत लेने के कारण फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है! एक-एक कुर्त्ता तथा धोती भी ऐसी नहीं थी जो साबुत होती। लंगोट बांधकर दिन व्यतीत करते थे। अंगोछे पहनकर नहाते थे, एक समय क्षेत्र में भोजन करते थे, एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे। मैं पन्द्रह वर्ष से एक

समय दूध पीता था। इन लोगों की यह दशा देखकर मुझे दूध पीने का साहस न होता था। मैं भी सबके साथ बैठकर सत्तू खा लेता था। मैंने विचार किया कि इतने नवयुवकों के जीवन को नष्ट करके उन्हें कहां भेजा जाये ? जब समिति का सदस्य बना था, तो लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाई थीं। कइयों का पढ़ना-लिखना छुड़ाकर काम में लगा दिया था। पहले से मुझे यह हालत मालूम होती तो मैं कदापि इस प्रकार की समिति में योग न देता। बुरा फंसा! क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता था। अन्त में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।

इसी बीच में बंगाल आर्डिनेंस निकला और गिरफ्तारियां हुई। इनकी गिरफ्तारियों ने यहां तक असर डाला कि कार्यकर्त्ताओं में निष्क्रियता के भाव आ गये। क्या प्रबन्ध किया जाये, कुछ निर्णय नहीं कर सके। मैंने प्रयत्न किया कि किसी तरह एक सौ रुपया मासिक का कहीं से प्रबन्ध हो जाए। प्रत्येक केन्द्र के प्रतिनिधि से हर प्रकार से प्रार्थना की थी कि समिति के सदस्यों से कुछ सहायता लें, मासिक चन्दा वसूल करें पर किसी ने कुछ न सुनी। कुछ सज्जनों से व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे अपने वेतन में से कुछ मासिक दे दिया करें। किसी ने कुछ ध्यान न दिया। सदस्य रोज मेरे द्वार पर खड़े रहते थे। पत्रों की भरमार थी कि कुछ धन का प्रबन्ध कीजिए, भूखों मर रहे हैं। दो-एक को व्यवसाय में लगाने का भी इन्तजाम किया। दो-चार जिलों में काम बन्द कर दिया, वहां के कार्यकर्त्ताओं से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम मासिक शुल्क नहीं दे सकते। यदि निर्वाह का कोई दूसरा मार्ग हो, और उस पर ही निर्भर रहकर कार्य कर सकते हो तो करो। हमसे जिस समय हो सकेगा देंगे, किन्तु मासिक वेतन देने के लिए हम बाध्य नहीं। कोई बीस रुपये कर्ज के मांगता था, कोई पचास का बिल भेजता था, और कइयों ने असन्तुष्ट होकर कार्य छोड़ दिया। मैंने भी समझ लिया—ठीक ही है, पर इतना करने पर भी गुजर न हो सकी।

अशान्त युवक-दल

कुछ महानुभावों की प्रकृति होती है कि अपनी कुछ शान जमाना या अपने आपको बड़ा दिखाना, अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जिससे भयंकर हानियां हो जाती हैं। भोले-भाले आदमी ऐसे मनुष्यों में विश्वास करके उनमें आशातीत साहस, योग्यता तथा कार्यदक्षता की आशा करके

उन पर श्रद्धा रखते हैं। किन्तु समय आने पर यह निराशा के रूप में परिणित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्यों की किन्हीं कारणवश यदि प्रतिष्ठा हो गई, अथवा अनुकूल परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने से उन्होंने किसी उच्च कार्य में योग दे दिया, तब तो फिर वे अपने आपको बड़ा भारी कार्यकर्त्ता जाहिर करते हैं। जनसाधारण भी अन्धविश्वास से उनकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं, विशेषकर नवयुवक तो इस प्रकार के मनुष्यों के जाल में शीघ्र ही फंस जाते हैं। ऐसे ही लोग नेतागिरी की धुन में अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाया करते हैं। इसी कारण पृथक्-पृथक् दलों का निर्माण होता है। इस प्रकार के मनुष्य प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। इनसे क्रान्तिकारी दल भी मुक्त नहीं रह सकता। **नवयुवकों का स्वभाव चंचल होता है, वे शान्त रहकर संगठित कार्य करना बड़ा दुष्कर समझते हैं। उनके हृदय में उत्साह की उमंगें उठती है। वे समझते हैं दो-चार अस्त्र हाथ आये कि हमने गवर्नमेन्ट को नाकों चने चबवा दिए! मैं भी जब क्रान्तिकारी दल में योग देने का विचार कर रहा था, उस समय मेरी उत्कण्ठा थी कि यदि एक रिवाल्वर मिल जाये तो दस-बीस अंग्रेजों को मार दूं!** इस प्रकार के भाव मैंने कई नवयुवकों में देखे। उनकी बड़ी प्रबल हार्दिक इच्छा होती है, कि किसी प्रकार एक रिवाल्वर या पिस्तौल उनके हाथ लग जाये तो वे उसे अपने पास रख लें। मैंने उनसे रिवाल्वर पास रखने का लाभ पूछा, तो कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। कई युवकों को मैंने इस शौक को पूरा करने में सैकड़ों रुपये बरबाद करते भी देखा है। किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन के सदस्य नहीं, कोई विशेष कार्य भी नहीं, महज शौकिया रिवाल्वर पास रखेंगे! ऐसे ही थोड़े से युवकों का एक दल एक महोदय ने भी एकत्रित किया। ये सब बड़े सच्चरित्र, स्वाभिमानी और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। इस दल ने विदेश से अस्त्र प्राप्त करने का बड़ा उत्तम सूत्र प्राप्त किया था, जिससे यथारुचि पर्याप्त अस्त्र मिल सकते थे। उन अस्त्रों के दाम भी अधिक न थे। अस्त्र भी पर्याप्त संख्या में बिलकुल नये मिलते थे। यहां तक प्रबन्ध हो गया था कि यदि हम लोग रुपये का उचित प्रबन्ध कर देंगे, और यथासमय मूल्य निपटा दिया करेंगे, तो हमको माल उधार भी मिल जाया करेगा और हमें जब, जिस प्रकार के, जितनी संख्या में अस्त्रों की आवश्यकता होगी, मिल जाया करेंगे। यही नहीं समय आने पर हम

विशेष प्रकार की, मशीन वाली बन्दूकें भी बनवा सकेंगे। इस समय समिति की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब थी। इस सूत्र के हाथ लग जाने और इसके लाभ उठाने की इच्छा होने पर भी बिना रुपये के कुछ होता दिखलाई न पड़ता था। रुपये का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक था। किन्तु वह हो कैसे? दान कोई देता न था, कर्ज भी न मिलता था, और कोई उपाय न देख डाका डालना तय हुआ। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति (Private property) पर डाका डालना हमें अभीष्ट न था। सोचा, यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाये? इसी उधेड़बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास की गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाया, और गार्ड के डब्बे में डाल गया। कुछ खटपट की आवाज हुई। मैंने उतर कर देखा कि एक लोहे का सन्दूक रखा है। विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी देखा। अनुमान किया लोहे के सन्दूक गार्ड के डिब्बे में जंजीर से बन्धा रहता होगा, ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के, आमदनी वाले सन्दूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उनमें जंजीर ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूंगा।

रेलवे डकैती

उसी समय से धुन सवार हुई। तुरन्त स्थान पर जा टाइम-टेबुल देखकर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपये रोज की आमदनी होती होगी। सब बातें ठीक करके कार्य-कर्त्ताओं का संग्रह किया। दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तारघर पर अधिकार कर लें, और गाड़ी का सन्दूक उतारकर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे लेकर चल दें, परन्तु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी। इसी कारण यही निश्चय किया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके तब लूटा जाये। सम्भव है कि तीसरे दर्जे की जंजीर खींचने से गाड़ी न खड़ी हो, क्योंकि तीसरे दर्जे में बहुधा प्रबन्ध ठीक नहीं रहता है। इस कारण से दूसरे दर्जे की जंजीर खींचने का प्रबन्ध किया। सब लोग उसी ट्रेन में सवार थे। गाड़ी खड़ी

होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुंच गये। लोहे का सन्दूक उतारकर छेनियों से काटना चाहा, छेनियों ने काम न दिया, तब कुल्हाड़ा चला।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ। गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी, ताकी बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके। दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडण्डी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें। एक सज्जन गार्ड के डिब्बे से उतरे। उनके पास भी माउजर पिस्तौल था। विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आए। माउजर पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा ? उमंग जो आई, सीधी करके दागने लगे। मैंने जो उनको देखा तो डांटा, क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी (काम) ही न थी। फिर यदि कोई मुसाफिर कौतूहलवश बाहर को सिर निकाले तो उसके गोली जरूर लग जाये! हुआ भी ऐसा ही, जो व्यक्ति रेल से उतरकर अपनी स्त्री के पास जा रहा था, मेरा ख्याल है कि इन्हीं महाशय की गोली उसके लग गई, क्योंकि जिस समय यह महाशय सन्दूक नीचे डालकर गार्ड के डिब्बे से उतरे थे, केवल दो-तीन फायर हुए थे। उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा और उसका पति उसके पास जा रहा था, जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया! मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबन्ध किया था कि जब तक कोई बन्दूक लेकर सामना करने न आये, या मुकाबले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पाए। मैं नर-हत्या कराके डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था। फिर भी मेरा कहा न मानकर अपना काम छोड़ गोली चला देने का यह परिणाम हुआ! गोली चलाने की ड्यूटी जिनको मैंने दी थी वे बड़े दक्ष तथा अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असम्भव है। उन लोगों को मैंने देखा कि वे अपने स्थान से पांच मिनट बाद पांच फायर करते थे। यही मेरा आदेश था।

सन्दूक तोड़ तीन गठरियों में थैलियां बांधीं। सबसे कई बार कहा— देख लो कोई समान रह तो नहीं गया इस पर भी एक महाशय चद्दर डाल आए! रास्ते में थैलियों से रुपया निकालकर गठरी बांधी और उसी समय लखनऊ शहर में जा पहुंचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो, कहां से आये हो ? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोककर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे, जिनके पास बन्दूक या

रायफलें थीं। दो अंग्रेज सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शान्त रहे। ड्राइवर महाशय तथा एक इंजीनियर महाशय दोनों का बुरा हाल था। वे दोनों अंग्रेज थे। ड्राइवर महाशय इंजन में लेटे रहे। इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छिपे! हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से न बोलेंगे सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण मुसाफिर भी शान्तिपूर्वक बैठे रहे। समझे तीस-चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतंक फैला दिया। साधारणतः इस बात पर बहुत से मनुष्य विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो वास्तव में बात यही थी। इन दस कार्यकर्त्ताओं में अधिकतर तो ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाईस वर्ष के होंगे, और जो शरीर से बड़े पुष्ट भी न थे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बहुत बढ़ गया। मेरा जो विचार था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। पुलिस वालों की वीरता का मुझे अन्दाजा था। इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बन्ध गई। नवयुवकों का भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्जा था निपटा दिया। अस्त्रों को खरीद के लिये लगभग एक हजार रुपये भेज दिये। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ता को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रान्तों में भी कार्य-विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबन्ध किया। एक युवक-दल ने बम बनाने का प्रबन्ध किया, मुझसे सहायता चाही। मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया। किन्तु कुछ त्रुटियां हुईं, जिससे सम्पूर्ण दल अस्त-व्यस्त हो गया।

मैं इस विषय में कुछ भी न जान सका कि दूसरे देश के क्रान्तिकारियों ने प्रारम्भिक अवस्था में हम लोगों की भांति प्रयत्न किया या नहीं। यदि पर्याप्त अनुभव होता तो इतनी साधारण भूलें न करते। त्रुटियों के होते हुए भी कुछ भी न बिगड़ता और न कुछ भेद खुलता, न इस अवस्था को पहुंचते, क्योंकि मैंने जो संगठन किया था उसमें किसी ओर से मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी कारण आंख बन्द किये बैठे रहे। **किन्तु आस्तीन में सांप छिपा हुआ था, ऐसा गहरा मुंह मारा कि चारों खाने चित्त कर दिया!**

जिन्हें हम हार समझते थे गला अपना सजाने को,
वही अब नाग बन बैठे, हमें ही काट खाने को!

नवयुवकों में आपस की होड़ के कारण बहुत वितण्डा तथा कलह भी हो जाती थी, जो भयंकर रूप धारण कर लेती। मेरे पास जब मामला आता तो मैं प्रेम-पूर्वक समिति की दशा का अवलोकन कराके, सबको शान्त क़र देता। कभी नेतृत्व को लेकर वाद-विवाद चल जाता। एक केन्द्र के निरीक्षण से वहां कार्यकर्त्ता अत्यन्त असंतुष्ट थे। क्योंकि निरीक्षक से अनुभवहीनता के कारण कुछ भूलें हो गई थीं। यह अवस्था देख मुझे बड़ा खेद तथा आश्चर्य हुआ, क्योंकि नेतागिरी का भूत सबसे भयानक होता है। जिस समय से यह भूत खोपड़ी पर सवार होता है, उसी समय से सब काम चौपट हो जाता है। केवल एक-दूसरे के दोष देखने में समय व्यतीत होता है और वैमनस्य बढ़कर भयंकर परिणामों का उत्पादन होता है। इस प्रकार के समाचार सुन मैंने सबको एकत्रित कर खूब फटकारा। सब अपनी त्रुटि समझकर पछताए और प्रीतिपूर्वक आपस में मिलकर कार्य करने लगे। पर ऐसी अवस्था हो गई थी कि दलबन्दी की नौबत आ गई थी। इस प्रकार से तो दलबन्दी हो ही गई थी। पर मुझपर सबकी श्रद्धा थी और मेरे वक्तव्य को सब मान लेते थे। सब कुछ होने पर भी मुझे किसी ओर से किसी प्रकार का सन्देह न था। किन्तु परमात्मा को ऐसा ही स्वीकार था, जो इस अवस्था का दर्शन करना पड़ा।

गिरफ्तारी

काकोरी डकैती होने के बाद से ही पुलिस बहुत सचेत हुई। बड़े जोरों के साथ जांच आरम्भ हो गई। शाहजहांपुर में कुछ नई मूर्तियों के दर्शन हुए। पुलिस के कुछ विशेष सदस्य मुझ से भी मिले। चारों ओर शहर में यही चर्चा थी कि रेवले डकैती किसने कर ली ? उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक-दो नोट निकल आये, अब तो पुलिस का अनुसंधान और भी बढ़ने लगा। कई मित्रों ने मुझसे कहा भी कि सतर्क रहो। दो एक सज्जन ने निश्चितरूपेण समाचार दिया कि मेरी गिरफ्तारी जरूर हो जाएगी। मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने विचार किया कि यदि गिरफ्तारी हो भी गई तो पुलिस को मेरे विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिल सकेगा। अपनी बुद्धिमता पर कुछ अधिक विश्वास था। अपनी बुद्धि के सामने दूसरों की बुद्धि तुच्छ समझता था। कुछ यह भी विचार था कि देश की सहानुभूति की परीक्षा की जाए। जिस देश पर हम अपना बलिदान देने को उपस्थित हैं, उस देश के वासी हमारे साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं ? कुछ जेल का अनुभव भी प्राप्त करना था।

वास्तव में, मैं काम करते-करते थक गया था। भविष्य के कार्यों में अधिक नर-हत्या का ध्यान करके मैं हतबुद्धि-सा हो गया था। मैंने किसी के कहने की कोई चिन्ता न की।

रात्रि के समय ग्यारह बजे के लगभग एक मित्र के यहां से अपने घर पर गया। रास्ते में खुफिया पुलिस के सिपाहियों से भेंट हुई। कुछ विशेष रूप से उस समय भी वे मेरी देखभाल कर रहे थे। मैंने कोई चिन्ता न की और घर पर जाकर सो गया। प्रात:काल चार बजने पर जगा, शौचादि से निवृत्त होने पर बाहर द्वार पर बन्दूक के कुन्दों का शब्द सुनाई दिया। मैं समझ गया कि पुलिस आ गई है। मैं तुरन्त ही द्वार खोलकर बाहर गया। एक पुलिस अफसर ने बढ़कर हाथ पकड़ लिया। मैं गिरफ्तार हो गया। मैं केवल एक अंगोछा पहने हुए था। पुलिस वाले को अधिक भय न था। पूछा, यदि घर में कोई अस्त्र हो, तो दे दीजिए। मैंने कहा कोई आपत्तिजनक वस्तु घर में नहीं। उन्होंने बड़ी सज्जनता की। मेरे हथकड़ी इत्यादि कुछ न डाली। मकान की तलाशी लेते समय एक पत्र मिल गया, जो मेरी जेब में था। कुछ होनहार कि तीन-चार पत्र मैंने लिखे थे। डाकखाने में डालने को भेजे, तब तक डाक निकल चुकी थी। मैंने वे सब इस ख्याल से अपने पास ही रख लिए कि डाक के बम्बे में डाल दूंगा। फिर विचार किया जैसे बम्बे में पड़े रहेंगे, वैसे जेब में पड़े हैं। मैं उन पत्रों को वापस घर ले आया। उन्हीं में एक पत्र आपत्तिजनक था जो पुलिस के हाथ लग गया। गिरफ्तार होकर पुलिस कोतवाली पहुंचा। वहां पर खुफिया पुलिस के एक अफसर से भेंट हुई। उस समय उन्होंने कुछ ऐसी बातें कीं, जिन्हें मैं या एक व्यक्ति और जानता था। कोई तीसरा व्यक्ति इस प्रकार से ब्यौरेवार नहीं जान सकता था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु सन्देह इस कारण न हो सकता था कि मैं दूसरे व्यक्ति के कार्यों पर अपने शरीर के समान ही विश्वास रखता था। शाहजहांपुर में जिन-जिन व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई, वह भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। जिन पर कोई सन्देह भी न था, पुलिस उन्हें कैसे जान गई ? दूसरे स्थानों पर क्या हुआ कुछ भी न मालूम हो सका कि सम्भवत: दूसरे स्थानों में भी गिरफ्तारियां हुई होंगी। गिरफ्तारियों के समाचार सुनकर शहर के सभी मित्र भयभीत हो गए। किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम लोगों के पास समाचार भेजने का प्रबन्ध कर देता!

जेल

जेल में पहुंचते ही खुफिया पुलिस वालों ने यह प्रबन्ध कराया कि हम सब एक–दूसरे से अलग रखे जाएं, किन्तु फिर भी एक दूसरे से बातचीत हो जाती थी। यदि साधारण कैदियों के साथ देखते तब तो बातचीत का पूर्ण प्रबन्ध हो जाता, इस कारण से सबको अलग–अलग तनहाई की कोठरियों में बन्द कर दिया गया। यही प्रबन्ध दूसरे जिले की जेलों में भी, जहां–जहां भी इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियाँ हुईं थीं, किया गया था। अलग–अलग रखने से पुलिस को यह सुविधा होती है कि प्रत्येक से पृथक्–पृथक् मिलकर बातचीत करते हैं। कुछ भय दिखाते हैं, कुछ इधर–उधर की बातें करके भेद जानने का प्रयत्न करते हैं। अनुभवी लोग तो पुलिस वालों से मिलने से इन्कार ही कर देते हैं। क्योंकि उनसे मिलकर हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाचार जानने के लिए कुछ बातचीत करते हैं। पुलिस वालों से मिलना ही क्या है। वे तो चालबाजी से बात निकालने की ही रोटी खाते हैं। उनका जीवन इसी प्रकार की बातों में व्यतीत होता है। नवयुवक दुनियादारी क्या जानें? न वे इस प्रकार की बातें ही बना सकते हैं।

जब किसी तरह कुछ समाचार ही न मिलते तब तो जी बहुत घबराता। यही पता नहीं चलता कि पुलिस क्या कर रही है, भाग्य का क्या निर्णय होगा? जितना समय व्यतीत होता जाता था उतनी ही चिन्ता बढ़ती जाती थी। जेल–अधिकारियों से मिलकर पुलिस यह भी प्रबन्ध करा देती है कि मुलाकात करने वालों से घर के सम्बन्ध में बातचीत करें, मुकदमे के सम्बन्ध में कोई बातचीत न करें। सुविधा के लिए सबसे प्रथम यह परमावश्यक है कि एक विश्वास–पात्र वकील किया जाए जो यथासमय आकर बातचीत कर सके। वकील के लिए किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती। वकील के साथ अभियुक्त की जो बातें होती हैं, उनको कोई दूसरा सुन नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार का कानून है, यह अनुभव बाद में हुआ। गिरफ्तारी के बाद शाहजहांपुर के वकीलों से मिलना भी चाहा, किन्तु शाहजहांपुर में ऐसे दब्बू वकील रहते हैं, जो सरकार के विरुद्ध मुकदमे में सहायता देने से हिचकते हैं।

मुझे खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले। थोड़ी–सी बातें करके अपनी इच्छा प्रकट की कि मुझे सरकारी गवाह बनाना चाहते हैं। थोड़े

दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी न पकड़ा जाए, बनारसीलाल से भेंट की और समझा-बुझाकर उसे सरकारी गवाह बना दिया। बनारसीलाल बहुत घबराता था कि कौन सहायता देगा, सजा जरूर हो जाएगी, यदि किसी वकील से मिल लिया होता तो उसका धैर्य न टूटता। पं० हरकरनाथ शाहजहांपुर आए, जिस समय वह अभियुक्त श्रीयुत प्रेमकृष्ण खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं० हरकरनाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझसे तथा दूसरे अभियुक्तों से मिल लें। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीलाल को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात्रि को पहले एक इन्सपेक्टर बनारसीलाल से मिले। फिर जब मैं सो गया तब बनारसीलाल को निकालकर ले गए प्रातःकाल पांच बजे के करीब, जब बनारसीलाल की कोठरी में से शब्द न सुनाई दिया, तो मैंने बनारसीलाल को पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ, बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के सम्बन्ध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाया था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के सम्बन्ध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न रह सकेगा। इस कारण सबने उसे किसी प्रकार के गुप्त कार्य में लेने की मनाही की थी। अब तो जो होना था सो हो ही गया।

थोड़े दिनों बाद जिला कलक्टर मिले। कहने लगे फांसी हो जाएगी, बचना हो तो बयान दे दो। मैंने कुछ उत्तर न दिया। तत्पश्चात् खुफिया पुलिस के कप्तान साहिब मिले, बहुत-सी बातें कीं। कई कागज दिखलाए। मैंने कुछ-कुछ अन्दाजा लगाया कि कितनी दूर तक ये लोग पहुंच गये हैं। मैंने कुछ बातें बनाईं, ताकि पुलिस का ध्यान दूसरी ओर चला जाये, परन्तु उन्हें तो विश्वसनीय सूत्र हाथ लग चुका था, वे बनावटी बातों पर क्या विश्वास करते? अन्त में उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का सम्बन्ध बताकर कुछ बोलशेविक सम्बन्ध के विषय में अपना बयान दे दूं, तो वे मुझे थोड़ी-सी सजा देंगे, और सजा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैण्ड भेज देंगे और पन्द्रह हजार रुपये पारितोषिक भी सरकार से दिला देंगे। मैं मन-ही-मन बहुत हंसता था। अन्त में एक दिन फिर मुझसे जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आये। मैंने अपनी कोठरी में से निकलने से ही इन्कार कर दिया। वह कोठरी पर आकर बहुत-सी बातें

करते रहे, अन्त में परेशान होकर चले गए।

शिनाख्तें कराई गईं। पुलिस को जितने आदमी मिल सके उतने आदमी लेकर शिनाख्त कराई। भाग्यवश श्री अईनुद्दीन साहब मुकदमे के मजिस्ट्रेट मुकर्रर हुए, उन्होंने जी भर के पुलिस की मदद की। शिनाख्तों में अभियुक्तों को साधारण मजिस्ट्रेटों की भांति भी सुविधाएं न दी। दिखाने के लिए कागजी कार्रवाई खूब साफ रखी। जबान के बड़े मीठे थे। प्रत्येक अभियुक्त से बड़े तपाक से मिलते थे। बड़ी मीठी–मीठी बातें करते थे। सब समझते थे कि हमसे सहानुभूति रखते हैं। कोई न समझ सका कि अन्दर–ही–अन्दर घाव कर रहे हैं। इतना चालाक अफसर शायद ही कोई दूसरा हो। जब तक मुकदमा उनकी अदालत में रहा, किसी को कोई शिकायत का मौका ही न दिया। यदि कभी कोई बात भी हो जाती तो ऐसे ढंग से उसे टालने की कोशिश करते कि किसी को बुरा ही न लगता। बहुधा ऐसा भी हुआ कि खुली अदालत में अभियुक्तों से क्षमा तक मांगने में संकोच न किया। किन्तु कागजी कार्यवाई में इतने होशियार थे कि जो कुछ लिखा सदैव अभियुक्तों के विरुद्ध! जब मामला सेशन सुपुर्द किया और आज्ञापत्र में युक्तियाँ दीं, तब सब की आंखें खुलीं कि कितना गहरा घाव मार दिया।

मुकदमा अदालत में न आया था, उसी समय रायबरेली में बनवारी लाल की गिरफ्तारी हुई। मुझे हाल मालूम हुआ। मैंने पं० हरकरनाथ से कहा कि सब काम छोड़कर सीधे रायबरेली जाएं और बनारसीलाल से मिलें, किन्तु उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। मुझे बनारसीलाल पर पहले ही सन्देह था, क्योंकि उसका रहन–सहन इस प्रकार का था कि जो ठीक न था। जब दूसरे सदस्यों के साथ रहता तब उनसे कहा करता कि मैं जिला संगठनकर्त्ता हूं। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा पालन किया करो। मेरे जूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिता–प्रिय भी था, प्रत्येक समय शीशा, कंघा, साबुन साथ रखता था। मुझे इससे भय था, किन्तु हमारे दल के एक खास आदमी का वह विश्वास पात्र रह चुका था। उन्होंने सैकड़ों रुपए देकर उसकी सहायता की थी। इसी कारण हम लोग भी अन्त तक उसे मासिक सहायता देते रहे थे। मैंने बहुत कुछ हाथ–पैर मारे। पर कुछ भी न चली, और जिसका मुझे भय था, वही हुआ। भाड़े का टट्टू अधिक बोझ न सम्भाल सका, उसने बयान दे दिये। जब तक यह गिरफ्तार न हुआ था कुछ सदस्यों ने इसके

पास जो अस्त्र थे वे मांगे, पर उसने न दिये। जिला अफसर की शान में रहा। गिरफ्तार होते ही सब शान मिट्टी में मिल गई। बनवारीलाल के बयान दे देने से पुलिस का मुकदमा मजबूती पकड़ गया। यदि वह अपना बयान न देता तो मुकदमा बहुत कमजोर था। सब लोग चारों ओर से एकत्रित करके लखनऊ जिला जेल में रखे गए। थोड़े समय तक अलग-अलग रहे, किन्तु अदालत में मुकदमा आने से पहले ही एकत्रित कर दिए गए।

मुकदमे में रुपये की जरूरत थी। अभियुक्तों के पास क्या था ? उनके लिए धन-संग्रह करना कितना दुस्तर था! न जाने किस प्रकार निर्वाह करते थे। अधिकतर अभियुक्तों का कोई सम्बन्धी पैरवी भी न कर सकता था। जिस किसी के कोई था भी, वह बाल-बच्चों तथा घर को सम्भालता या इतने समय तक घर-बार छोड़कर मुकदमा करता ? यदि चार अच्छे पैरवी करने वाले होते तो पुलिस का तीन-चौथाई मुकदमा टूट जाता। लखनऊ जैसे जनाने शहर में मुकदमा हुआ, जहां अदालत में कोई भी शहर का आदमी न आता था! इतना भी तो न हुआ कि एक अच्छा प्रेस-रिपोर्टर ही रहता, जो मुकदमे की सारी कार्यवाही को, जो कुछ अदालत में होता था, प्रेस में भेजता रहता! 'इण्डियन डेली टेलीग्राफ' वालों ने कृपा की। यदि कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया, और जो कुछ अदालत की कार्यवाही ठीक-ठीक प्रकाशित हुई तो पुलिस वालों ने जज साहब से मिलकर तुरन्त उस रिपोर्टर को निकलवा दिया! जनता की कोई सहानुभूति न थी। अभियुक्त चिल्लाये—''हाय! हाय!'' पर कुछ भी सुनवाई न हुई! और बातें तो दूर, श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ को पुलिस ने जेल में सड़ा डाला। लगभग एक वर्ष तक वे जेल में तड़फते रहे। सौ पौंड से केवल छियासठ पौंड वजन रह गया। कई बार जेल में मरणासन्न हो गए। नित्य बेहोशी आ जाती थी। लगभग दस मास तक कुछ भी भोजन न कर सके। जो कुछ छटांक-दो छटांक दूध किसी प्रकार पेट में पहुंच जाता था, उससे इस प्रकार की विकट वेदना होती थी कि कोई उनके पास खड़ा होकर उस छटपटाने के दृश्य को देख न सकता था। एक मैडिकल बोर्ड बनाया गया, जिसमें तीन डाक्टर थे उनकी कुछ समझ में न आया, तो कह दिया गया कि सेठजी को कोई बीमारी ही नहीं है! जब से काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्त जेल में एक साथ रहने लगे, तभी से उनमें एक अद्‌भुत परिवर्तन का समावेश हुआ,

जिसका अवलोकन कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। जेल में सबसे बड़ी बात तो यह थी कि प्रत्येक आदमी अपनी नेतागीरी की दुहाई देता था। कोई भी बड़े-छोटे का भेद न रहा। बड़े तथा अनुभवी पुरुषों की बातों की अवहेलना होने लगी। अनुशासन का नाम भी न रहा। बहुधा उलटे जवाब मिलने लगे। छोटी-छोटी बातों पर मतभेद हो जाता। इस प्रकार का मतभेद कभी-कभी वैमनस्य तक का रूपधारण कर लेता। आपस में झगड़ा भी हो जाता। खैर! जहां चार बर्तन रहते हैं, वहां खटकते ही हैं। ये लोग तो मनुष्य देहधारी थे। परन्तु लीडरी की धुन ने पार्टीबन्दी का ख्याल पैदा कर दिया। जो युवक जेल के बाहर अपने से बड़ों की आज्ञा को वेद-वाक्य के समान मानते थे, वे ही उन लोगों का तिरस्कार तक करने लगे! इसी प्रकार आपस का वाद-विवाद कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लिया करता। प्रान्तीय प्रश्न छिड़ जाता। बंगाली तथा संयुक्त प्रान्तीय वासियों के कार्य की आलोचना होने लगती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बंगाल ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में दूसरे प्रान्तों से अधिक कार्य किया है, किन्तु बंगालियों की हालत यह है कि जिस किसी कार्यालय या दफ्तर में बंगाली-ही-बंगाली दिखाई देंगे। जिस शहर में बंगाली रहते हैं उनकी बस्ती अलग ही बसती है। बोली भी अलग। खान-पान भी अलग। जेल में यही अनुभव हुआ।

जिन महानुभावों को मैं त्याग की मूर्ति समझता था, उनके अन्दर भी बंगालीपने का भाव देखा। मैंने जेल से बाहर कभी स्वप्न में भी यह विचार न किया था कि क्रान्तिकारी दल के सदस्यों में भी प्रान्तीयता के भावों का समावेश होगा। मैं तो यही समझता रहा कि क्रान्तिकारी तो समस्त भारतवर्ष को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका किसी प्रान्त विशेष से क्या सम्बन्ध? परन्तु साक्षात् देख लिया कि प्रत्येक बंगाली के दिमाग में कविवर रवीन्द्रनाथ का गीत '**अमर सोनार बांगला, आमितोमाके भालोवासी**' (मेरे सोने का बंगाल, मैं तुझसे मुहब्बत करता हूं) ठूंस-ठूंस कर भरा था, जिसका उनके नैमित्तिक जीवन में पग-पग पर प्रकाश होता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी जेल के बाहर इस प्रकार का अनुभव कदापि न प्राप्त हो सकता था।

बड़ी भयंकर-से-भयंकर आपत्ति में भी मेरे मुख से आह न निकली, प्रिय सहोदर का देहान्त होने पर भी आंख से आंसू न गिरा, किन्तु इस दल के कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी आज्ञा को मैं संसार में

सबसे श्रेष्ठ मानता था जिनकी जरा-सी कड़ी दृष्टि भी मैं सहन न कर सकता था, जिनके कटु वचनों के कारण मेरे हृदय पर चोट लगती थी और अश्रुओं का स्रोत उबल पड़ता था। मेरी इस अवस्था को देखकर दो-चार मित्रों को जो मेरी प्रकृति को जानते थे बड़ा आश्चर्य होता था। लिखते हुए हृदय कम्पित होता है कि उन्हीं सज्जनों में बंगाली तथा अबंगाली भाव इस प्रकार भरा था कि बंगालियों की बड़ी-से-बड़ी भूल, हठधर्मी तथा भीरुता की अवहेलना की गई। यह देखकर अन्य पुरुषों का साहस बढ़ता था, नित्य नई चालें चली जाती थी। आपस में ही एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाते थे! बंगालियों का न्याय-अन्याय सब सहन कर लिया जाता था। इन सारी बातों ने मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला। सब कृत्यों को देख मैं मन-ही-मन घुटा करता।

एक बार विचार हुआ कि सरकार से समझौता कर लिया जाए। बैरिस्टर साहब ने खुफिया पुलिस के कप्तान से परामर्श आरम्भ किया। किन्तु यह सोचकर कि इससे क्रान्तिकारी दल की निष्ठा न मिट जाए, यह विचार छोड़ दिया गया। युवक वृन्द की सम्मति हुई कि अनशन व्रत करके सरकार से हवालाती की हालत में ही मांगें पूरी करा ली जाएं क्योंकि लम्बी-लम्बी सजाएं होंगी। संयुक्त प्रान्त की जेलों में साधारण कैदियों का भोजन खाते हुए सजा काटकर जेल से जिन्दा निकलना कोई सरल कार्य नहीं। जितने राजनैतिक कैदी षड्यन्त्रों के सम्बन्ध में सजा पाकर इस प्रान्त की जेलों में रखे गए, उनमें से पांच-छः महात्माओं ने इन प्रान्तों की जेलों के व्यवहार के कारण ही जेलों में प्राण त्याग दिये!

इस विचार के अनुसार काकोरी के लगभग सब हवालातियों ने अनशन व्रत आरम्भ कर दिया। दूसरे ही दिन सब पृथक् कर दिये गए। कुछ व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट जेल में रखे गए, कुछ सेण्ट्रलजेल भेजे गए। अनशन करते पन्द्रह दिवस व्यतीत हो गए, तब सरकार के कान पर भी जूं रेंगी। उधर सरकार का काफी नुकसान हो रहा था। जज साहब तथा दूसरे कचहरी के कार्यकर्त्ताओं को घर बैठे वेतन देना पड़ता था। सरकार को स्वयं चिन्ता थी किसी प्रकार अनशन छूटे। जेल अधिकारियों ने पहले आठ आने रोज तय किये। मैंने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और बड़ी कठिनता से दस आने रोज पर ले आया। उस अनशन व्रत में पन्द्रह दिवस तक मैंने जल पीकर निर्वाह किया था। सोलहवें दिन नाक से दूध पिलाया गया था। श्रीयुत रोशनसिंहजी ने भी इसी प्रकार

मेरा साथ दिया था। वे पन्द्रह दिन तक बराबर चलते-फिरते रहे थे। स्नानादि करके अपने नैमित्तिक कर्म भी कर लिया करते थे। दस दिन तक तो मेरे मुख को देखकर अनजान पुरुष अनुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं अन्न नहीं खाता।

समझौते के जिस खुफिया पुलिस के अधिकारियों से मुख्य नेता महोदय का वार्तालाप बहुधा एकान्त में हुआ करता था, समझौते की बात खत्म हो जाने पर भी आप उन लोगों से मिलते रहे! मैंने कुछ विशेष ध्यान न दिया। यदा-कदा दो-एक बात से पता चलता कि समझौते के अतिरिक्त कुछ दूसरी बातें होती हैं। मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी एक समय सी० आई० डी० के कप्तान से मिलूं, क्योंकि मुझसे पुलिस बहुत असन्तुष्ट थी। मुझे पुलिस से न मिलने दिया गया। परिणामस्वरूप सी.आई.डी. वाले मेरे दुश्मन हो गए। सब मेरे व्यवहार की ही शिकायत किया करते। पुलिस अधिकारियों से बातचीत करके मुख्य नेता जाता रहा। जेल से निकलने के उद्योग में जो उत्साह था, वह बहुत ढीला हो गया। नवयुवकों की श्रद्धा को मुझसे हटाने के लिए अनेक प्रकार की बातें की जाने लगीं। मुख्य नेता महोदय ने स्वयं कुछ कार्यकर्त्ताओं से मेरे सम्बन्ध में कहा कि ये कुछ रुपये खा गए। मैंने एक-एक पैसे का हिसाब रखा था, जैसे ही मैंने इस प्रकार की बातें सुनी, मैंने कार्य कारिणी के सदस्यों के सामने रखकर हिसाब देना चाहा, और अपने विरुद्ध आक्षेप करने वाले को दण्ड देने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अब तो बंगालियों का साहस न हुआ कि मुझसे हिसाब समझें। मेरे आचरण पर भी आक्षेप किये गए।

जिस दिन सफाई की बहस मैंने समाप्त की, सरकारी वकील ने उठकर मुक्त कण्ठ से मेरी बहस की प्रशंसा की कि सैकड़ों वकीलों से अच्छी बहस की। मैंने नमस्कार कर उत्तर दिया कि आपके चरणों की कृपा है, क्योंकि इस मुकदमे के पहले मैंने किसी अदालत में समय न व्यतीत किया था, सरकारी तथा सफाई के वकीलों की जिरह को सुन कर मैंने भी साहस किया था। इसके बाद सबसे पहले मुख्य नेता महाशय के विषय में सरकारी वकील ने बहस करनी शुरू की। खूब ही आड़े हाथों लिया। अब तो मुख्य नेता महाशय का बुरा हाल था, क्योंकि उन्हें आशा थी कि सम्भव है सबूत की कमी से छूट जाएं या अधिक-से-अधिक पांच या दस वर्ष की सजा हो जाये। आखिर चैन न पड़ी।

सी० आई० डी० अफसरों को बुलाकर जेल में उनसे एकान्त में डेढ़ घण्टे तक बातें हुईं। युवक मण्डल को इसका पता चला। सब मिलकर मेरे पास आये। कहने लगे, इस समय सी० आई० डी० अफसर से क्यों मुलाकात की जा रही है? मेरी जिज्ञासा पर उत्तर मिला कि सजा होने के बाद जेल में क्या व्यवहार होगा, इस सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। मुझे सन्तोष न हुआ। दो या तीन दिन बाद मुख्य नेता महाशय एकान्त में बैठकर कई घण्टे तक कुछ लिखते रहे। लिखकर कागज जेब में रख भोजन करने गए। मेरी अन्तरात्मा ने कहा, 'उठ, देख तो क्या हो रहा है?' मैंने जेब से कागज निकालकर पढ़े। पढ़कर शोक तथा आश्चर्य की सीमा न रही। पुलिस द्वारा सरकार को क्षमा-प्रार्थना भेजी जा रही थी। भविष्य के लिए किसी प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलन या कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की गई थी। Undertaking दी गई थी। मैंने मुख्य कार्यकर्त्ताओं से सब विवरण कहकर इस सब का कारण पूछा कि क्या हम लोग इस योग्य भी नहीं रहे, जो हमसे किसी प्रकार का परामर्श किया जाए? तब उत्तर मिला कि व्यक्तिगत बात थी। मैंने बड़े जोर के साथ विरोध किया कि यह कदापि व्यक्तिगत बात नहीं हो सकती। खूब फटाकर बतलाई। मेरी बातों को सुन चारों और खलबली पड़ी। मुझे बड़ा क्रोध आया कि कितनी धूर्त्तता से काम किया गया। मुझे चारों ओर से चढ़ाकर लड़ने के लिए प्रस्तुत किया गया। मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचे गए। मेरे ऊपर अनुचित आक्षेप किये गए, नवयुवकों के जीवन का भार लेकर लीडरी की शान झाड़ी गई, थोड़ी-सी आपत्ति पड़ने पर इस प्रकार बीस-बीस वर्ष के युवकों को बड़ी-बड़ी सजाएं दिला, जेल में सड़ने को डालकर स्वयं बंधेज से निकल जाने का प्रयत्न किया गया! धिक्कार है ऐसे जीवन को! किन्तु सोच-समझकर चुप रहा।

अभियोग

काकोरी में रेलवे ट्रेन लुट जाने के बाद ही, पुलिस का विशेष विभाग उक्त घटना का पता लगाने के लिए तैनात किया गया। एक विशेष व्यक्ति मि० हार्टन इस विभाग के निरीक्षक थे। उन्होंने घटनास्थल तथा रेलवे पुलिस की रिपोर्टों को देखकर अनुमान किया कि सम्भव है यह कार्य क्रान्तिकारियों का हो। प्रान्त के क्रान्तिकारियों की जांच शुरू हुई। उसी समय शाहजहांपुर में रेलवे डकैती के तीन नोट मिले। चोरी गए नोटों की संख्या सौ से अधिक थी, जिनका मूल्य लगभग एक हजार

रुपये के होगा। इनमें से लगभग सात सौ या आठ सौ रुपये के मूल्यके नोट सीधे सरकार के खजाने में पहुंच गए। अत: सरकार नोटों के मामले को चुपचाप पी गई। ये नोट लिस्ट प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकारी खजाने में पहुंच चुके थे। पुलिस का लिस्ट प्रकाशित करना व्यर्थ हुआ। सरकारी खजाने में से ही जनता के पास कुछ नोट लिस्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही पहुंच गए थे, इस कारण वे जनता के पास निकल आये।

उन्हीं दिनों में जिला खुफिया पुलिस को मालूम हुआ कि मैं 8, 9 तथा 10 अगस्त सन् 1925 ई० को शाहजहांपुर नहीं था। अधिक जांच होने लगी। इसी जांच-पड़ताल में पुलिस को मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट स्कूल शाहाजहांपुर के इन्दुभूषण मित्र नामी एक विद्यार्थी के पास मेरे क्रान्तिकारी दल सम्बन्धी पत्र आते हैं, जो वह मुझे दे आता है। स्कूल के हैडमास्टर द्वारा इन्दुभूषण के पास आये हुए पत्रों की नकल करा के हार्टन साहब के पास भेजी जाती रही। इन्हीं पत्रों से हार्टन साहब को मालूम हुआ कि मेरठ में प्रान्त क्रान्तिकारी समिति की बैठक होने वाली है। उन्होंने एक सबइन्स्पेक्टर को मेरठ अनाथालय में, जहां पर मीटिंग होने का पता चला था, भेजा। उन्हीं दिनों हार्टन साहब को किसी विशेष सूत्र से मालूम हुआ कि शीघ्र ही कनखल में डाका डालने का प्रबन्ध क्रान्तिकारी समिति के सदस्य कर रहे हैं, और सम्भव है कि किसी बड़े शहर में डाकखाने की आमदनी लूटी जाए। हार्टन साहब को एक सूत्र से एक पत्र मिला, जो मेरे हाथ का लिखा था। इस पत्र में सितम्बर में होने वाले श्राद्ध का जिक्र था जिसकी 13 तारीख निश्चित की गई थी। पत्र में था कि दादा का श्राद्ध नं० 1 पर 13 सितम्बर को होगा, अवश्य पधारिये। मैं अनाथालय में मिलूंगा। पत्र पर 'रुद्र' के हस्ताक्षर थे।

आगामी डकैतियों को रोकने के लिए हार्टन साहब ने प्रान्त भर में 26 सितम्बर सन् 1925 ई० को लगभग तीस मनुष्यों को गिरफ्तार किया। उन्हीं दिनों में इन्दुभूषण के पास आए हुए पत्र से पता लगा कि कुछ वस्तुएं बनारस में किसी विद्यार्थी की कोठरी में बन्द हैं। अनुमान किया गया कि सम्भव है कि वे हथियार हों। अनुसंधान करने से हिन्दू विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी की कोठरी से दो राइफलें निकलीं। उस विद्यार्थी को कानपुर में गिरफ्तार किया गया। इन्दुभूषण ने मेरी गिरफ्तारी की सूचना एक पत्र द्वारा बनारस को भेजी। जिसके पास पत्र भेजा था, उसे पुलिस गिरफ्तार कर चुकी थी, क्योंकि उसी श्री रामनाथ पाण्डेय

के पते का पत्र मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे मकान से पाया था। रामनाथ पाण्डेय के पत्र पुलिस के पास पहुंचे थे। अतः इन्दुभूषण को गिरफ्तार किया गया। इन्दुभूषण ने दूसरे दिन अपना बयान दे दिया। गिरफ्तार किये हुए व्यक्तियों में से कुछ से मिल–मिलाकर बनारसीलाल ने भी, जो शाहजहांपुर की जेल में था, अपना बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। यह कुछ अधिक जानता था। इसके बयान से क्रान्तिकारी पत्र के पार्सलों का पता चला। बनारस के डाकखाने से जिन–जिनके पास पार्सल भेजे गए थे उनको पुलिस ने गिरफ्तार किया। कानपुर में गोपीनाथ ने जिसके नाम पार्सल गया था, गिरफ्तार होते ही पुलिस को बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। इसी प्रकार रायबरेली में स्कूल विद्यार्थी कुंवर बहादुर के पास पार्सल आया था, उसने भी गिरफ्तार होते ही बयान दे दिया और सरकारी गवाह बना लिया गया। इसके पास मनीआर्डर भी आया करते थे, क्योंकि यह बनवारी का पोस्ट बॉक्स (डाक पाने वाला) था। इसने बनवारीलाल के एक रिश्तेदार का पता बताया, जहां तलाशी लेने से बनवारीलाल का एक ट्रंक मिला। इस ट्रंक में से कारतूसी पिस्तौल, एक कारतूसी फौजी रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। श्री बनवारीलाल की खोज हुई। बनवारीलाल भी पकड़ लिए गए। गिरफ्तारी के थोड़े दिन बाद ही पुलिस वाले मिले, उल्टा–सीधा सुझाया और बनवारीलाल ने भी अपना बयान दे दिया तथा इकबाली मुलजिम बनाये गए। श्रीयुत बनवारीलाल ने काकोरी डकैती में अपना सम्मिलित होना बताया था। उधर कलकत्ते में दक्षिणेश्वर में एक मकान में बम बनाने का सामान, एक बना हुआ बम, 7 रिवाल्वर, पिस्तौल तथा कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य पकड़ा गया। इसी मकान में श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी बी० ए०, जो इस मुकदमे में फरार थे, गिरफ्तार हुए।

इन्दुभूषण के गिरफ्तार हो जाने के बाद उसके हैडमास्टर को एक पत्र मध्य प्रान्त से मिला, जिसे उसने हार्टन साहब के पास वैसा ही भेज दिया। इस पत्र से एक व्यक्ति मोहनलाल खत्री का चान्दा में पता चला। वहां से पुलिस ने खोज लगाकर पूना में श्रीयुत रामकृष्ण खत्री को गिरफ्तार करके लखनऊ भेजा। बनारस में भेजे हुए पार्सलों के सम्बन्ध से जबलपुर में श्रीयुत प्रणवेशकुमार चटर्जी को गिरफ्तार करके भेजा गया। कलकत्ता से श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल, जिन्हें बनारस षड्यन्त्र

से आजन्म कालेपानी की सजा हुई थी, और जिन्हें बांकुरा में 'क्रान्तिकारी' पर्चे बांटने के कारण दो वर्ष की सजा हुई थी, इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। श्रीयुत योगेशचन्द्र चटर्जी बंगाल आर्डीनेंस के कैदी हजारी बाग जेल से भेजे गए। आप अक्टूबर सन् 1924 ई० में कलकत्ते में गिरफ्तार हुए थे। आपके पास दो कागज पाए गये थे, जिनमें संयुक्त प्रान्त के सब जिलों का नाम था, और लिखा था कि बाईस जिलों में समिति का कार्य हो रहा है। ये कागज इस षड्यन्त्र के सम्बन्ध के समझे गए। श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में दस वर्ष द्वीपान्तर की सजा पाने के बाद इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए अब लगभग छत्तीस मनुष्य गिरफ्तार हुए थे। अट्ठाईस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चला। तीन व्यक्ति 1. **श्रीयुत शचीन्द्रनाथ बख्शी,** 2. **श्रीयुत चन्द्रशेखर आजाद,** 3. **श्रीयुत अशफाकउल्ला खां** फरार रहे। अट्ठाईस में से दो पर से मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा उठा लिया गया। दो को सरकारी गवाह बनाकर उन्हें माफी दी गई। अन्त में मजिस्ट्रेट ने इक्कीस व्यक्तियों को सेशन सुपुर्द किया। सेशन में मुकदमा आने पर श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ बहुत बीमार हो गए। अदालत न आ सकते थे, अत: अन्त में बीस व्यक्ति रह गए। बीस में से दो व्यक्ति श्रीयुत शचीन्द्रनाथ बिस्वास तथा श्रीयुत हरगोविन्द सेशन की अदालत से मुक्त हुए। बाकी अठारह को सजाएं हुईं।

श्री बनवारीलाल इकबाली मुलाजिम हो गए। वे रायबरेली जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी रह चुके हैं। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में छ: मास का कारावास भी भोगा था। इस पर भी पुलिस की धमकी से प्राण संकट में पड़ गए! आप ही हमारी समिति के ऐसे सदस्य थे कि जिन पर समिति का सबसे अधिक धन व्यय किया गया। प्रत्येक मास आपको पर्याप्त धन भेजा जाता था। मर्यादा की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति बनवारीलाल को मासिक शुल्क दिया करते थे। अपने पेट काटकर इनको मासिक व्यय दिया गया। फिर भी इन्होंने अपने सहायकों की गर्दन पर छुरी चलाई! अधिक-से-अधिक दस वर्ष की सजा हो जाती। जिस प्रकार सबूत इनके विरुद्ध था, वैसे ही, इसी प्रकार के दूसरे अभियुक्तों पर था, जिन्हें दस-दस वर्ष की सजा हुई। यही नहीं पुलिस के बहकाने से सेशन में बयान देते समय जो नई बातें इन्होंने जोड़ी, उनमें मेरे सम्बन्ध में कहा कि रामप्रसाद डकैतियों के रुपये से अपने परिवार

का निर्वाह करता है! इस बात को सुनकर मुझे हंसी भी आई, पर हृदय पर बड़ा आघात लगा कि जिनकी उदर-पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाला, दिन को दिन और रात को रात न समझा, बुरी तरह से मार खाई, माता-पिता का कुछ भी ख्याल न किया, वही इस प्रकार आक्षेप करें!

समिति के सदस्यों ने इस प्रकार का व्यवहार किया। बाहर जो साधारण जीवन के सहयोगी थे, उन्होंने भी अद्भुत रूप धारण किया। एक ठाकुर साहब के पास काकोरी डकैती का नोट मिल गया था। वह कहीं शहर में पा गए थे। जब गिरफ्तारी हुई, मजिस्ट्रेट के यहां जमानत नामंजूर हुई, जज साहब ने चार हजार की जमानत मांगी। कोई जमानती न मिलता था। आपके वृद्ध भाई मेरे पास आये। पैरों पर सिर रखकर रोने लगे। मैंने जमानत कराने का प्रयत्न किया। मेरे माता-पिता कचहरी जाकर खुले रूप से पैरवी करने को मना करते रहे कि पुलिस खिलाफ है, रिपोर्ट हो जाएगी, पर मैंने एक न सुनी। कचहरी जाकर, कोशिश करके जमानत दाखिल कराई। जेल से उन्हें स्वयं जाकर छुड़ाया। पर जब मैंने उक्त महाशय का नाम उक्त घटना की गवाही देने के लिए सूचित किया, तब पुलिस ने उन्हें धमकाया और उन्होंने पुलिस को तीन बार लिखकर दे दिया कि हम रामप्रसाद को जानते भी नहीं! हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में जिनके घरों की रक्षा की थी, जिनके बाल-बच्चे मेरे सहारे मुहल्ले में निर्भयता से निवास करते रहे, उन्होंने ही मेरे खिलाफ झूठी गवाहियां बनवाकर भेजीं। कुछ मित्रों के भरोसे पर उनका नाम गवाही में दिया कि जरूर गवाही देंगे संसार लौट जाए पर वे नहीं डिग सकते। पर वचन दे चुकने पर भी जब पुलिस का दबाव पड़ा, वे भी गवाही देने से इन्कार कर गए! जिनको अपना हृदय, सहोदर तथा मित्र समझ कर हर तरह की सेवा करने को तैयार रहता था, जिस प्रकार की आवश्यकता होती यथाशक्ति उनको पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करता था, उनसे इतना भी न हुआ कि कभी जेल पर आकर दर्शन दे जाते, फांसी की कोठरी में ही आकर संतोषदायक दो बातें कर जाते! एक-दो सज्जनों ने इतनी कृपा तथा साहस किया कि दस मिनट के लिये अदालत में दूर खड़े होकर दर्शन दे गए। यह सब इसलिये कि पुलिस का आतंक छाया हुआ था कि गिरफ्तार न कर लिए जाएं। इस पर भी जिसने जो कुछ किया मैं उसी को अपना सौभाग्य समझता हूं, और

उनका आभारी हूं—

वह फूल चढ़ाते हैं, तुर्बत भी दबी जाती।
माशूक के थोड़े से भी एहसान बहुत हैं॥

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि सब प्रसन्न तथा सुखी रहें। मैंने तो सब बातों को जानकर ही इस मार्ग पर पैर रखा था। मुकदमे के पहले संसार का कोई अनुभव ही न था। न कभी जेल देखी, न किसी अदालत का कोई तजुर्बा था। जेल में जाकर मालूम हुआ कि किसी नई दुनियां में पहुंच गया। मुकदमे से पहले मैं यह भी न जानता था कि कोई लेखन-कला-विज्ञान भी है, इसका कोई विशेषज्ञ (Hand-writing expert) भी होता है, जो लेखन शैली को देखकर लेखकों का निर्णय कर सकता है। यह भी नहीं पता था कि लेख किस प्रकार मिलाये जाते हैं, एक मनुष्य के लेख में क्या भेद होता है, क्यों भेद होता है, लेखनकला विशेषज्ञ हस्ताक्षर को प्रमाणित कर सकता है, तथा लेखक के वास्तविक लेख में तथा बनावटी लेख में भेद कर सकता है, इस प्रकार का कोई भी अनुभव तथा ज्ञान न रखते हुए भी एक प्रान्त की क्रान्तिकारी समिति का सम्पूर्ण भार लेकर उसका संचालन कर रहा था! बात यह है कि क्रान्तिकारी कार्य की शिक्षा देने के लिए कोई पाठशाला तो है ही नहीं। यह हो सकता था कि पुराने अनुभवी क्रान्तिकारियों से कुछ सीखा जाए। न जाने कितने व्यक्ति बंगाल तथा पंजाब के षड्यन्त्रों में गिरफ्तार हुए, पर किसी ने भी यह उद्योग न किया कि एक इस प्रकार की पुस्तक लिखी जाए, जिसमें नवागन्तुकों को कुछ अनुभव की बातें मालूम होतीं।

लोगों को इस बात की बड़ी उत्कण्ठा होगी कि क्या यह पुलिस का भाग्य ही था, जो सब बना-बनाया मामला हाथ आ गया। क्या पुलिस वाले परोक्ष ज्ञानी होते हैं? कैसे गुप्त बातों का पता चला लेते हैं? कहना पड़ता है कि यह इस देश का दुर्भाग्य! सरकार का सौभाग्य!! बंगाल पुलिस के सम्बन्ध में तो अधिक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि मेरे कुछ विशेषानुभव नहीं। इस प्रान्त की खुफिया पुलिस वाले तो महान् भौंदू होते हैं, जिन्हें साधारण ज्ञान भी नहीं होता। साधारण पुलिस से खुफिया में आते हैं। साधारण पुलिस की दरोगाई करते हैं, मजे में लम्बी-लम्बी घूस खाकर बड़े-बड़े पेट बढ़ा आराम करते हैं। उनकी बला तकलीफ उठाए! यदि कोई एक-दो चालाक हुए भी तो थोड़े दिन बड़े ओहदे की फिराक में काम दिखाया, दौड़-धूप की, कुछ पद-वृद्धि

हो गई और सब काम बन्द! इस प्रान्त में कोई बाकायदा पुलिस का गुप्तचर विभाग नहीं, जिसको नियमित रूप से शिक्षा दी जाती हो। फिर काम करते-करते अनुभव हो ही जाता है। मैनपुरी षड्यन्त्र तथा इस षड्यन्त्र से इसका पूरा पता लग गया, कि थोड़ी-सी कुशलता से कार्य करने पर पुलिस के लिए पता पाना बड़ा कठिन है। वास्तव में उनके कुछ भाग्य ही अच्छे होते हैं। जब से इस मुकदमे की जांच शुरू हुई, पुलिस ने इस प्रान्त के संदिग्ध क्रान्तिकारी व्यक्तियों पर दृष्टि डाली, उनसे मिली, बातचीत की। एक-दो को कुछ धमकी दी। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली जनश्रुति के अनुसार एक महाशय से पुलिस को सारा भेद मालूम हो गया। हम सबके सब चक्कर में थे कि इतनी जल्दी पुलिस ने मामले का पता कैसे लगा लिया! उक्त महाशय की ओर तो ध्यान भी न जा सकता था। पर गिरफ्तारी के समय मुझसे तथा पुलिस के अफसर से जो बातें हुईं, उनमें पुलिस अफसर ने वे सब बातें मुझसे कहीं जिनको मेरे तथा उक्त महाशय के अतिरिक्त कोई भी दूसरा जान ही न सकता था। और भी बड़े पक्के तथा बुद्धिगम्य प्रमाण मिल गए कि जिन बातों को उक्त महाशय जान सके थे, वे ही पुलिस जान सकी। जो बातें आपको मालूम न थीं, वे पुलिस को किसी प्रकार न मालूम हो सकीं, उन बातों से यह निश्चय हो गया कि यह काम उन्हीं महाशय का है। यदि ये महाशय पुलिस के हाथ न आते और भेद न खोल देते, तो पुलिस सिर पटक कर रह जाती, कुछ भी पता न चलता। बिना दृढ़ प्रमाणों के भयंकर-से-भयंकर व्यक्ति पर भी हाथ रखने का साहस नहीं होता, क्योंकि जनता में आन्दोलन फैलने से बदनामी हो जाती है। सरकार पर जवाबदेही आती है। अधिक-से-अधिक दो-चार मनुष्य पकड़े जाते और अन्त में उन्हें भी छोड़ना पड़ता। परन्तु जब पुलिस को वास्तविक सूत्र हाथ में आ गया, उसने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए लिखा हुआ प्रमाण पुलिस को दे दिया। उस अवस्था में यदि पुलिस गिरफ्तारियां न करती तो फिर कब करती? जो भी हुआ, परमात्मा उनका भी भला करे। अपना तो जीवन भर यही उसूल रहा—

सताये तुझको जो कोई बेवफा 'बिस्मिल'।
तो मुंह से कुछ न कहना आह! कर लेना॥
हम शहीदाने वफा का दीनों ईमां और है।
सिजदे करते हैं हमेशा पांव पर जल्लाद के॥

मैंने इस अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी जिन्दगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उसमें से ज्यादा हिस्सा श्रीयुत अशफाकउल्ला खां वारसी का है। मैं अपनी कलम से उनके लिए भी अन्तिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

अशफाक



मुझे भली-भांति याद है, जब कि मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहांपुर आया था, तो तुमसे स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझसे मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे 'मैनपुरी षड्यन्त्र' के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझकर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझसे इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था। तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट-मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कोशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कोशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गए थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें सन्तोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गए। सबको आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा ? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचित्मात्र चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय में दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में

आते-जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई तुम्हें खुल्लमखुल्ला गालियां देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे स्वदेश-भक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता, कि वे हिन्दुओं के साथ मिलकर के हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव सही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें ? तुमने स्वदेशभक्ति के भावों को भलीभांति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया अपने घर पर जब माताजी तथा भ्राताजी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुंह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को सन्देह होता था कि कहीं इस्लाम-धर्म त्याग कर शुद्धि न करा लो। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते ? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र-मण्डली से बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने-तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से वह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हां! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम तो सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हारे हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुंह से बारम्बार 'राम' 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े हुए भाई-बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम', 'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह' 'अल्लाह' कहो, पर तुम्हारी 'राम-राम' की रट थी! उस समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरन्त मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब सब लोग 'राम राम!' के भेद को समझे!

अन्त में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी कट्टर क्रान्तिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि किस प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों

में भी क्रान्तिकारी भावों का प्रवेश हो। वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दें। जितने तुम्हारे बन्धु तथा मित्र थे सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रान्तिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रान्तिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञापालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम्हारे भाव बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि **अशफाकउल्ला** ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई-बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे! जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनेण्ट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमा का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फांसी की रस्सी) पहना दी। **प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता-पिता की धन-सम्पत्ति को देश-सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देश-सेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवा में अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृ-भूमि की भेंट चढ़ा दिया।**

'असगर' हरीम इश्क में हस्ती ही जुर्म है।
रखना कभी न पांव यहां सर लिये हुए॥

फांसी की कोठरी

अन्तिम समय निकट है। दो फांसी की सजाएं सिर पर झूल रही हैं। पुलिस को साधारण जीवन में और समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में खूब जी-भर के कोसा है। खुली अदालत में जज साहब, खुफिया पुलिस के अफसर, मजिस्ट्रेट, सरकारी वकील तथा सरकार को खूब आड़े हाथों लिया है। हरेक के दिल में मेरी बातें चुभ रही हैं। कोई दोस्त आशना, अथवा यार मददगार नहीं, जिसका सहारा हो। एक परमपिता

परमात्मा की याद है। गीता पाठ करते हुए सन्तोष है कि—

जो कुछ किया सो तैं किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं।
जहां कहीं मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेभ्यो पद्मपत्रमिवाम्भसः॥

भगवद्गीता /5/10

'जो फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके कर्म करता है, वह पाप से लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल-पत्र जल में नहीं होता।' **जीवनपर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। यदि शरीर की पालना की तो इसी विचार से कि सुदृढ़ शरीर से भले प्रकार स्वदेशी सेवा हो सके। बड़े प्रयत्नों से यह शुभ दिन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रान्त में इस तुच्छ शरीर का ही सौभाग्य होगा। जो सन् 1857 ई० के गदर की घटनाओं के पश्चात् क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में इस प्रान्त के निवासी का पहला बलिदान मातृ-वेदी पर होगा।**

सरकार की इच्छा है कि मुझे घोट-घोटकर मारे। इसी कारण इस गरमी की ऋतु में साढ़े तीन महीने बाद अपील की तारीख नियत की गई। साढ़े तीन महीने तक फांसी की कोठरी में भूंजा गया। यह कोठरी पक्षी के पिंजरे से भी खराब है। गोरखपुर जेल की फांसी की कोठरी मैदान में बनी है। किसी प्रकार की छाया निकट नहीं। प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक सूर्य देवता की कृपा से तथा चारों ओर रेतीली जमीन होने से अग्नि वर्षण होता रहता है। नौ फीट लम्बी तथा नौ फीट चौड़ी कोठरी में केवल छः फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा द्वार है। पीछे की ओर जमीन के आठ या नौ फीट की ऊंचाई पर एक-दो फीट लम्बी, एक फुट चौड़ी खिड़की है। इसी कोठरी में भोजन, स्नान, मल-मूत्र त्याग तथा शयनादि होता है। मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रात भर सुनाया करते हैं। बड़े प्रयत्न से रात्रि में तीन या चार घण्टे निद्रा आती है, किसी-किसी दिन एक-दो घण्टे ही सोकर निर्वाह करना पड़ता था। मिट्टी के पात्रों में भोजन दिया जाता है। ओढ़ने-बिछाने के दो कम्बल मिले हैं। बड़े त्याग का जीवन है। साधना के साधन एकत्रित हैं। **प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है—अन्तिम समय के लिए तैयार हो जाओ, परमात्मा का भजन करो।**

मुझे तो इस कोठरी में बड़ा आनन्द आ रहा है। मेरी इच्छा थी कि

किसी साधु की गुफा पर कुछ दिन निवास करके योगाभ्यास किया जाता। अन्तिम समय वह इच्छा भी पूर्ण हो गई। साधु की गुफा न मिले तो क्या, साधना की गुफा तो मिल गई। इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अन्तिम बात लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूं। सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए। बड़ी कठिनता से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

महसूस हो रहे है बादे फ़ना के झोंके।
खुलने लगे हैं मुझ पर असरार जिन्दगी के॥
बारे अलम उठाया रंगे निशात देखा।
आये नहीं हैं यूं ही अन्दाज बेहिसी के॥
वफ़ा पर दिल को सदके जान को नज़रे जफ़ा कर दे।
मुहब्बत में यह लाज़िम है कि जो कुछ हो फ़िदा कर दे॥

अब तो यही इच्छा है—

बहे बहरे फ़ना में जल्द या रब लाश 'बिस्मिल' की।
कि भूखी मछलियां हैं जौहरे शमशीर कातिल की॥
समझकर फूंकना इसकी ज़रा ऐ दागे नाकामी।
बहुत-से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से॥

परिणाम

ग्यारह वर्ष पर्यन्त यथाशक्ति प्राणपण से चेष्टा करने पर भी हम अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुए ? क्या लाभ हुआ ? इसका विचार करने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि हमने लाभ-हानि अथवा जय-पराजय के विचार से क्रान्तिकारी दल में योग नहीं दिया था। हमने जो कुछ किया वह अपना कर्त्तव्य समझकर किया। कर्त्तव्य-निर्णय में हमने कहां तक बुद्धिमत्ता से काम लिया, इसका विवेचन करना उचित जान पड़ता है। राजनैतिक दृष्टि से हमारे कार्यों का इतना ही मूल्य है कि कतिपय होनहार नवयुवकों के जीवन को कष्टमय बनाकर नीरस कर दिया, और उन्हीं में से कुछ ने व्यर्थ में जान गंवाईं। कुछ धन भी खर्च किया। हिन्दू-शास्त्र के अनुसार किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, जिसका जिस विधि से जो काल होता है, वह उसी विधि समय पर ही प्राण त्याग करता है। केवल निमित्त-मात्र कारण उपस्थित हो जाते है। लाखों भारतवासी महामारी, हैजा, ताऊन इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों से मर जाते हैं। करोड़ों दुर्भिक्ष में अन्न बिना प्राण

त्यागते हैं, तो उसका उत्तरदायित्व किस पर है ? रह गया धन का व्यय, सो इतना धन तो भले आदमियों के विवाहोत्सवों में व्यय हो जाता है। गणमान व्यक्तियों की तो केवल विलासिता की सामग्री का मासिक व्यय इतना होगा, जितना कि हमने एक षड्यन्त्र के निर्माण में व्यय किया। हम लोगों को डाकू बताकर फांसी और काले पानी की सजाएं दी गई हैं। किन्तु हम समझते हैं कि वकील और डाक्टर हमसे कहीं बड़े डाकू हैं। वकील-डॉक्टर दिन दहाड़े बड़े-बड़े तालुल्केदारों की जायदादें लूटकर खा गए। वकीलों के चाटे हुए अवध के तालुल्केदारों को ढूंढे रास्ता भी दिखाई नहीं देता और वकील की ऊंची अट्टालिकाएं उन पर खिलखिला कर हंस रही हैं ! इसी प्रकार लखनऊ में डॉक्टरों के भी ऊंचे-ऊंचे महल बन गए। किन्तु राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है। अन्यथा रात के साधारण डाकुओं और दिन के इन डाकुओं (वकील तथा डॉक्टरों) में कोई भेद नहीं। दोनों अपने-अपने मतलब के लिए बुद्धि की कुशलता से प्रजा का धन लूटते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम लोगों के कार्य का बहुत बड़ा मूल्य है। जिस प्रकार भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिरी हुई अवस्था में भी, भारतवासी युवकों के हृदय में स्वाधीन होने के भाव विराजमान हैं। वे स्वतन्त्र होने की यथाशक्ति चेष्टा भी करते हैं। यदि परिस्थितियां अनुकूल होतीं तो यही इने-गिने नवयुवक अपने प्रयत्नों से संसार को चकित कर देते। उस समय भारतवासियों को भी फ्रांसीसियों की भांति कहने का सौभाग्य प्राप्त होता जो कि उस जाति के नवयुवकों ने फ्रांसीसी प्रजातन्त्र की स्थापना करते हुए कहा था : The monument so raised, may serve as a lesson to the oppressors and an instance to the oppressed. **अर्थात् स्वाधीनता का जो स्मारक निर्माण किया गया है वह अत्याचारियों के लिए शिक्षा का कार्य करे और अत्याचार-पीड़ितों के लिए उदाहरण बने।**

गाजी मुस्तफा कमालपाशा जिस समय तुर्की से भागे थे उस समय केवल इक्कीस युवक आपके साथ थे। कोई साजो-सामान न था, मौत का वारण्ट पीछे-पीछे घूम रहा था। पर समय ने ऐसा पलटा खाया कि उसी कमाल ने अपने कमाल से संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया। वही कातिल कमालपाशा टर्की का भाग्यनिर्माता बन गया। महामना **लेनिन** को एक दिन शराब के पीपों में छिपकर भागना पड़ा था, नहीं

तो मृत्यु में कुछ देर न थी। वही महात्मा लेनिन रूस के भाग्यविधाता बने। श्री **शिवाजी डाकू** और लूटेरे समझे जाते थे, पर समय आया जबकि हिन्दू जाति ने उन्हें अपना सिरमौर बना, गौ-ब्राह्मण-रक्षक छत्रपति शिवाजी बना दिया! भारत सरकार को भी अपने स्वार्थ के लिए छत्रपति के स्मारक निर्माण कराने पड़े। **क्लाइव** एक उद्‌दण्ड विद्यार्थी था, जो अपने जीवन से निराश हो चुका था। समय के फेर ने उसी उद्‌दण्ड विद्यार्थी को अंग्रेज जाति का राज्य-स्थापनकर्त्ता लार्ड क्लाइव बना दिया। श्री **सुनयात सेन** चीन के अराजकवादी पलायक (भागे हुए) थे। समय ने ही उसी पलायक को चीनी प्रजातन्त्र का सभापति बना दिया। **सफलता ही मनुष्य के भाग्य का निर्माण करती है। असफल होने पर उसी को बर्बर, डाकू, अराजक, राजद्रोही तथा हत्यारे के नामों से विभूषित किया जाता है। सफलता उन्हीं सब नामों को बदलकर दयालु, प्रजापालक, न्यायकारी प्रजातन्त्रवादी तथा महात्मा बना देती है।**

भारतवर्ष के इतिहास में हमारे प्रयत्नों का उल्लेख करना ही पड़ेगा, किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि भारतवर्ष की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक किसी प्रकार की परिस्थिति इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष में नहीं है। इसका कारण यही है कि भारतवासियों में शिक्षा का अभाव है। वे साधारण से साधारण सामाजिक उन्नति करने में भी असमर्थ हैं। फिर राजनैतिक क्रान्ति की बात कौन कहे? राजनैतिक क्रान्ति के लिए सर्वप्रथम क्रान्तिकारियों का संगठन ऐसा होना चाहिए कि अनेक विघ्न तथा बाधाओं के उपस्थित होने पर भी संगठन में किसी प्रकार त्रुटि न आए। सब कार्य यथावत् चलते रहें। कार्यकर्त्ता इतने योग्य तथा पर्याप्त संख्या में होने चाहिएं कि एक की अनुपस्थिति में दूसरा स्थान-पूर्ति के लिए सदा उद्यत रहे। भारतवर्ष में कई बार कितने ही षड्यन्त्रों का भण्डा फूट गया और सब किया-कराया काम चौपट हो गया। जब क्रान्तिकारी दलों की यह अवस्था है तो फिर क्रान्ति के लिए उद्योग कौन करे? देशवासी इतने शिक्षित हों कि वे वर्तमान सरकार की नीति को समझकर अपने हानि-लाभ को जानने में समर्थ हो सकें। वे यह भी पूर्णतया समझते हों कि वर्तमान सरकार को हटाना आवश्यक है या नहीं। साथ ही साथ उनमें इतनी बुद्धि भी होनी चाहिए कि किस रीति से सरकार को हटाया जा सकता है। क्रान्तिकारी दल क्या है? वह

क्या करना चाहता है ? क्यों करना चाहता है ? इन सारी बातों को जनता की अधिक संख्या समझ सके, क्रान्तिकारियों के साथ जनता की पूर्ण सहानुभूति हो, तब कहीं क्रान्तिकारी दल को देश में पैर रखने का स्थान मिल सकता है। यह तो क्रान्तिकारी दल की स्थापना की प्रारम्भिक बातें हैं। रह गई क्रान्ति, सो वह तो बहुत दूर की बात है।

क्रान्ति का नाम ही बड़ा भयंकर है। प्रत्येक प्रकार की क्रान्ति विपक्षियों को भयभीत कर देती है। जहां पर रात्रि होती है तो दिन का आगमन जान निशिचरों को दु:ख होता है। ठंडे जलवायु में रहने वाले पशु-पक्षी गरमी के आने पर उस देश को भी त्याग देते हैं। फिर राजनैतिक क्रान्ति तो बड़ी भयावनी होती है। मनुष्य अभ्यासों का समूह है। अभ्यासों के अनुसार ही उसकी प्रकृति भी बन जाती है। उसके विपरीत जिस समय कोई बाधा उपस्थित होती है, तो उनको भय प्रतीत होता है। **इसके अतिरिक्त प्रत्येक सरकार के सहायक अमीर और जमींदार होते हैं। ये लोग कभी नहीं चाहते कि उनके ऐशो-आराम में किसी प्रकार की बाधा पड़े। इसलिए वे हमेशा क्रान्तिकारी आन्दोलन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।** यदि किसी प्रकार दूसरे देशों की सहायता लेकर, समय पाकर क्रान्तिकारी दल क्रान्ति के उद्योग में सफल हो जाए, देश में क्रान्ति हो जाए तो भी योग्य नेता न होने से अराजकता फैलकर व्यर्थ की नर-हत्या होती है, और उस प्रयत्न में अनेक सुयोग्य वीरों तथा विद्वानों का नाश हो जाता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण सन् 1857 ई० का गदर है। यदि फ्रांस तथा अमेरिका की भांति क्रान्ति द्वारा राजतन्त्र को पलटकर प्रजातन्त्र स्थापित भी कर लिया जाए तो बड़े-बड़े धनी पुरुष अपने धन, बल से सब प्रकार के अधिकारों को दबा बैठते हैं। कार्यकारिणी समितियों में बड़े-बड़े अधिकार धनियों को प्राप्त हो जाते हैं। देश के शासन में धनियों का मत ही उच्च आदर पाता है। धन-बल से देश के समाचार-पत्रों, कल-कारखानों तथा खानों पर उनका ही अधिकार हो जाता है। मजबूरन जनता की अधिक संख्या धनिकों का समर्थन करने को बाध्य हो जाती है। जो दिमाग वाले होते हैं, वे भी समय पाकर बुद्धिबल से जनता की खरी कमाई से प्राप्त किए अधिकारों को हड़प कर बैठते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर वे श्रमजीवियों तथा कृषकों को उन्नति का अवसर नहीं देते। अन्त में ये लोग भी धनियों के पक्षपाती होकर राजतन्त्र के स्थान में धनिकतन्त्र की ही स्थापना करते

हैं। रूसी क्रान्ति के पश्चात् यही हुआ था। रूस के क्रान्तिकारी इस बात को पहले ही जानते थे। अतएव उन्होंने राज्य-सत्ता के विरुद्ध युद्ध करके राजतन्त्र की समाप्ति की। इसके बाद जैसे ही धनी तथा बुद्धिजीवियों ने रोड़ा अटकाना चाहा कि उसी समय उनसे भी युद्ध करके उन्होंने वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना की।

अब विचारने की बात यह है कि भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थक कौन-कौन से साधन मौजूद हैं ? पूर्व पृष्ठों में मैंने अपने अनुभवों का उल्लेख करके दिखला दिया है कि समिति के सदस्यों की उदर-पूर्ति तक के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ा। प्राणपण से चेष्टा करने पर भी असहयोग आन्दोलन के पश्चात् कुछ थोड़े-से ही गिने-चुने युवक युक्तप्रान्त में ऐसे मिल सके, जो क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करके सहायता देने को उद्यत हुए। इन गिने-चुने व्यक्तियों में भी हार्दिक सहानुभूति रखने वाले, अपनी जान पर खेल जाने वाले, कितने थे, उसका कहना ही क्या है! कैसे बड़ी-बड़ी आशाएं बंधाकर इन व्यक्तियों को क्रान्तिकारी समिति का सदस्य बनाया गया था, और इस अवस्था में, जबकि असहयोगियों ने सरकार की ओर से घृणा उत्पन्न कराने में कोई कसर न छोड़ी थी, खुले रूप में राज्यद्रोही बातों का पूर्ण प्रचार किया गया था। इस पर भी बोलशेविक सहायता की आशाएं बधां-बंधा कर तथा क्रान्तिकारियों के ऊंचे-ऊंचे आदर्शों तथा बलिदानों का उदाहरण दे-देकर प्रोत्साहन दिया जाता था। नवयुवकों के हृदय में क्रान्तिकारियों के प्रति बड़ा प्रेम तथा श्रद्धा होती है। उनकी अस्त्र-शस्त्र रखने की स्वाभाविक इच्छा तथा रिवाल्वर या पिस्तौल से प्राकृतिक प्रेम उन्हें क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति उत्पन्न करा देता है। मैंने अपने क्रान्तिकारी जीवन में एक भी युवक ऐसा न देखा, जो एक रिवाल्वर या पिस्तौल अपने पास रखने की इच्छा न रखता हो। जिस समय उन्हें रिवाल्वर के दर्शन होते हैं, वे समझते हैं कि इष्टदेव के दर्शन प्राप्त हुए, आधा जीवन सफल हो गया! उसी समय से वे समझते हैं कि क्रान्तिकारी दल के पास इस प्रकार के सहस्रों अस्त्र होंगे, तभी तो इतनी बड़ी सरकार से युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। सोचते हैं कि धन की भी कोई कमी न होगी! अब क्या, अब समिति के व्यय से देश-भ्रमण का अवसर भी प्राप्त होगा, बड़े-बड़े त्यागी महात्माओं के दर्शन होंगे, सरकारी गुप्तचर विभाग का भी हाल मालूम हो सकेगा, सरकार द्वारा जब्त किताबें कुछ तो पहले

पढ़ा दी जाती हैं, रही-सही की भी आशा रहती है कि बड़ा उच्च साहित्य देखने को मिलेगा, जो यों कभी प्राप्त नहीं हो सकता। साथ ही साथ ख्याल होता है कि क्रान्तिकारियों ने देश के राजा-महाराजाओं को तो अपने पक्ष में कर ही लिया होगा। अब क्या, थोड़े दिन की ही कसर है, उलट दिया सरकार का राज्य! बम बनाना सीख ही जाएंगे, अमर बूटी प्राप्त हो जाएगी, इत्यादि। परन्तु जैसे ही एक युवक क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनकर हार्दिक प्रेम से समिति के कार्यों में योग देता है, थोड़े दिनों में ही उसे विशेष सदस्य होने के अधिकार प्राप्त होते हैं, वह ऐक्टिव (कार्यशील) मेम्बर बनता है, उसे संस्था का कुछ असली भेद मालूम होता है, तब समझ में आता हैकि कैसे भीषण कार्य में उसने हाथ डाला है। फिर तो वही दशा हो जाती है, जो **'नकटा पंथ'** के सदस्यों की थी। जब चारों ओर से असफलता तथा अविश्वास की घटाएं दिखाई देती हैं, तब यही विचार होता है कि ऐसे दुर्गम पथ में ये परिणाम तो होते ही हैं। दूसरे देश के क्रान्तिकारियों के मार्ग में भी ऐसी ही बाधाएं उपस्थित हुई होंगी। वीर वही कहलाता है जो अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार की बातों से मन को शान्त किया जाता है। भारत के जनसाधारण की तो कोई बात ही नहीं। अधिकांश शिक्षित समुदाय भी यह नहीं जानता कि क्रान्तिकारी दल क्या चीज है, फिर उनसे सहानुभूति कौन रखे? बिना देशवासियों की सहानुभूति के अथवा बिना जनता की आवाज के सरकार भी किसी बात की कुछ चिन्ता नहीं करती। दो-चार पढ़े-लिखे एक-दो अंग्रेजी अखबार में दबे हुए शब्दों में यदि दो एक लेख लिख दें, तो वे अरण्यरोदन के समान निष्फल सिद्ध होते हैं। उनकी ध्वनि व्यर्थ में ही आकाश में विलीन हो जाती है। तमाम बातों को देखकर अब तो मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि अच्छा हुआ जो मैं गिरफ्तार हो गया और भागा नहीं। भागने की मुझे सुविधाएं थीं। गिरफ्तारी से पहले ही मुझे अपनी गिरफ्तारी का पूरा पता चल गया था। गिरफ्तारी के पूर्व भी यदि इच्छा करता तो पुलिस वालों को मेरी हवा भी न मिलती, किन्तु मुझे तो अपनी शक्ति की परीक्षा करनी थी। गिरफ्तारी के बाद सड़क पर आध घण्टे तक बिना किसी बन्धन के घूमता रहा। पुलिस वाले शान्तिपूर्वक बैठे हुए थे। जब पुलिस कोतवाली में पहुंचा, दोपहर के समय पुलिस कोतवाली के दफ्तर में बिना किसी बन्धन के खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही निगरानी के लिए पास बैठा

हुआ था, जो रातभर का जागा था। सब पुलिस अफसर भी रातभर के जगे हुए थे, क्योंकि गिरफ्तारियों में लगे रहे थे। सब आराम करने चले गए थे। निगरानी वाला सिपाही भी घोर निद्रा में सो गया! दफ्तर में केवल एक मुंशी लिखा-पढ़ी कर रहे थे। यह भी श्रीयुत रोशनसिंह अभियुक्त के फूफीजात भाई थे। यदि मैं चाहता तो धीरे से उठकर चल देता। पर मैंने विचारा कि मुंशी जी महाशय बुरे फंसेंगे। मैंने मुंशी जी को बुलाकर कहा कि यदि भावी आपत्ति के लिए तैयार हो तो मैं जाऊं। वे मुझे पहले से जानते थे। पैरों पड़ गए कि गिरफ्तार हो जाऊंगा, बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे। मुझे दया आ गई। एक घण्टे बाद श्री अशफाकउल्ला खां के मकान की तलाशी लेकर पुलिस वाले लौटे। श्री अशफाकउल्ला खां के भाई की कारतूसी बन्दूक और कारतूस की भरी हुई पेटी लाकर उन्हीं मुंशी जी के पास रख दी गई, और मैं पास ही कुर्सी पर खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही खाली हाथ पास में खड़ा था। इच्छा हुई कि बन्दूक उठाकर कारतूसों की पेटी गले में डाल लूं, फिर कौन सामने आता है! पर फिर सोचा कि मुंशी जी पर आपत्ति आएगी, विश्वासघात करना ठीक नहीं। उस समय खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट सामने छत पर आये। उन्होंने देखा कि मेरे एक ओर कारतूस तथा बन्दूक पड़ी है, दूसरी ओर श्रीयुत प्रेमकृष्ण का माउजर पिस्तौल तथा कारतूस रखे हैं, क्योंकि सब चीजें मुंशी जी के पास आकर जमा होती थीं और मैं बिना किसी बन्धन के बीच में खुला हुआ बैठा हूं। डिप्टी सुपरिंटेंडेंट को तुरन्त सन्देह हुआ, उन्होंने बन्दूक तथा पिस्तौल को वहां से हटवाकर मालखाने में बन्द करवाया। निश्चय किया कि अब भाग चलूं। पाखाने के बहाने से बाहर निकाला गया। एक सिपाही कोतवाली से बाहर दूसरे स्थान में शौच के निमित्त लिवा गया। दूसरे सिपाहियों ने उससे बहुत कुछ कहा कि रस्सी डाल लो। उसने कहा मुझे विश्वास है यह भागेगा नहीं। पाखाना नितान्त निर्जन स्थान में था। मुझे पाखाने भेजकर वह सिपाही खड़े होकर सामने कुश्ती देखने लगा। मैंने दीवार पर पैर रखा और चढ़कर देखा कि सिपाही महोदय कुश्ती देखने में मस्त है! हाथ बढ़ाते ही दीवार के ऊपर और एक क्षण में बाहर हो जाता, फिर मुझे कौन पकड़ पाता? किन्तु तुरन्त विचार आया कि जिस सिपाही ने विश्वास करके तुम्हें इतनी स्वतन्त्रता दी, उसके साथ विश्वासघात करके भागकर उसको जेल में डालोगे? क्या यह अच्छा होगा? उसके बाल-

बच्चे क्या कहेंगे ? इस भाव ने हृदय पर एक ठोकर लगाई। एक ठण्डी सांस भरी, दीवार से उतरकर बाहर आया, सिपाही महोदय को साथ लेकर कोतवाली की हवालात में आकर बन्द हो गया।

लखनऊ जेल में काकोरी के अभियुक्तों को बड़ी भारी आजादी थी। राय साहब पं० चम्पालाल जेलर की कृपा से हम कभी न समझ सके कि जेल में हैं या किसी रिश्तेदार के यहां मेहमानी कर रहे हैं। जैसे माता-पिता से छोटे-छोटे लड़के बात-बात पर बिगड़ जाते हैं, यही हमारा हाल था। हम लोग जेल वालों से बात-बात पर ऐंठ जाते। पं० चम्पालालजी का ऐसा हृदय था कि वे हम लोगों से अपनी सन्तान से भी अधिक प्रेम करते थे। हममें से किसी को जरा-सा कष्ट होता था, तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। हमारे तनिक-से कष्टको भी वह स्वयं न देख सकते थे। और हम लोग ही क्यों, उनके जेल में किसी कैदी या सिपाही, जमादार या मुन्शी—किसी को भी कोई कष्ट नहीं। सब बड़े प्रसन्न थे। इसके अतिरिक्त मेरी दिनचर्या तथा नियमों का पालन देखकर पहरे के सिपाही अपने गुरु से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। मैं यथानियम जाड़े,गर्मी तथा बरसात में प्रात:काल तीन बजे से उठकर संध्यादि से निवृत्त हो नित्य हवन भी करता था। प्रत्येक पहरे का सिपाही देवता के समान मेरा पूजन करता था। यदि किसी के बाल-बच्चे को कष्ट होता था, तो वह हवन की भभूत ले जाता था। कोई जंत्र मांगता था। उनके विश्वास के कारण उन्हें आराम भी होता था तथा उनकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती थी। परिणामस्वरूप जेल से निकल जाने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। जिस समय चाहता चुपचाप निकल जाता। एक रात्रि को तैयार होकर उठ खड़ा हुआ। बैरक के नम्बरदार तो मेरे सहारे पहरा देते थे। जब जी में आता सोते, जब इच्छा होती बैठ जाते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि सिपाही या जमादार सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के सामने पेश करना चाहेंगे तो मैं बचा लूंगा। सिपाही तो कोई चिन्ता ही न करते थे। चारों ओर शान्ति थी। केवल इतना प्रयत्न करना था कि लोहे की कटी हुई सलाखों को उठाकर बाहर हो जाऊं। चार महीने पहले से लोहे की सलाखें काट ली थीं। काटकर वे ऐसे ढंग से जमा दी थीं कि सलाखें धोई गईं, रंग लगवाई गई, तीसरे दिन झाडी जातीं, आठवें दिन हथौड़े से ठोंकी जातीं और जेल के अधिकारी नित्य प्रति सायंकाल घूमकर सब ओर दृष्टि डाल जाते थे, पर किसी को कोई पता न चला! जैसे ही मैं जेल से भागने का

विचार करके उठा था, ध्यान आया कि जिन पं० चम्पालाल की कृपा से सब प्रकार के आनन्द भोगने की स्वतन्त्रता जेल में प्राप्त हुई, उनके बुढ़ापे में जबकि थोड़ा-सा समय ही उनकी पेन्शन के लिए बाकी है, क्या उन्हीं के साथ विश्वासघात करके निकल भागूं? सोचा जीवन-भर किसी के साथ विश्वासघात न किया। अब भी विश्वासघात न करूंगा। उस समय मुझे यह भली-भांति मालूम हो चुका था कि मुझे फांसी की सजा होगी, पर उपरोक्त बात सोचकर भागना स्थगित कर दिया। ये सब बातें चाहे प्रलाप ही क्यों न मालूम हों, किन्तु सब अक्षरश: सत्य हैं, सबके प्रमाण विद्यमान हैं।

मैं इस समय इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हम लोगों ने प्राणपण से जनता को शिक्षित बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया होता, तो हमारा उद्योग क्रान्तिकारी आन्दोलन से कहीं अधिक लाभदायक होता, जिसका परिणाम स्थायी होता। अति उत्तम होगा यदि भारत की भावी सन्तान नवयुवकवृन्द क्रान्तिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देश-सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमीदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएं। भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती हैं। मध्य श्रेणी के लोग किसी न किसी प्रकार इन्हीं तीनों के आश्रित हैं। कोई तो नौकरपेशा हैं और जो कोई व्यवसाय भी करते हैं, उन्हें भी इन्हीं के मुंह की ओर ताकना पड़ता है। रह गये श्रमजीवी तथा कृषक—सो उनको उदर-पूर्ति के उद्योग से ही समय नहीं मिलता, जो धर्म, समाज तथा राजनीति की ओर कुछ ध्यान दे सकें। मद्यपानादि दुर्व्यसनों के कारण उनका आचरण भी ठीक नहीं रह सकता। व्यभिचार, सन्तान-वृद्धि, अल्पायु में मृत्यु तथा अनेक प्रकार के रोगों से जीवनभर उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। कृषकों में उद्योग का तो नाम भी नहीं पाया जाता। यदि एक किसान को जमींदार की मजदूरी करने या हल चलाने की नौकरी करने पर ग्राम में आज से बीस वर्ष पूर्व दो आने रोज या चार रुपये मासिक मिलते थे, तो आज भी वही वेतन बंधा चला आ रहा है! बीस वर्ष पूर्व वह अकेला था, अब उसकी स्त्री तथा चार सन्तानें भी हैं। पर उसी वेतन में उसे निर्वाह करना पड़ता है। उसे उसी पर सन्तोष करना पड़ता है। सारे दिन जेठ की लू तथा धूप में गन्ने के खेत में पानी देते-देते उसको रतौंधी आने लगती है। अंधेरा होते ही आंख से दिखाई नहीं देता, पर उसके बदले में आधा सेर

सड़े हुए शीरे का शरबत या आधा सेर चना तथा छ: पैसे रोज मजदूरी मिलती है, जिसमें ही उसे अपने परिवार का पेट पालना पड़ता है।

जिसके हृदय में भारतवर्ष की सेवा के भाव उपस्थित हों, या जो भारतभूमि को स्वतन्त्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधारकर, उनके हृदय से भाग्य-निर्भरता को हटाकर उद्योगी बनने की शिक्षा दे। कल-कारखाने, रेलवे, जहाज तथा खानों में जहां कही श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनको अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मनमाने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छ: करोड़ है, पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबन्ध हो तथा उनको सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छ: करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनने का अधिकार ही क्या है ? इसी के साथ ही साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे 'पैर की जूती' तथा 'घर की गुड़िया' न समझी जाएं। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता का अधिकांश शिक्षित हो जाएगा, वे अपनी भलाई-बुराई समझने के योग्य हो जाएंगे, उस समय प्रत्येक आन्दोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा। संसार की बड़ी-से-बड़ी शक्ति भी उसके दबाने में समर्थ न हो सकेगी। रूस में जब तक किसान संगठन नहीं हुआ, रूस सरकार की ओर से देश-सेवकों पर मनमाने अत्याचार होते रहे। जिस समय से 'केथोराइन' ने ग्रामीण-संगठन का कार्य अपने हाथ में लिया, स्थान-स्थान पर कृषक सुधारक संघों की स्थापना की, घूम-घूमकर रूस के युवक तथा युवतियों ने जारशाही के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया, तभी से किसानों को अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होने लगा और वे अपने मित्र तथा शत्रु को समझने लगे, उसी समय से जारशाही की नींव हिलने लगी। श्रमजीवियों के संघ भी स्थापित हुए। रूस में हड़तालों का आरम्भ हुआ। उसी समय से जनता की प्रवृत्ति को देखकर मदान्धों के नेत्र खुल गए।

भारतवर्ष में सबसे बड़ी कमी यही है कि इस देश के युवकों में शहरी जीवन व्यतीत करने की बान पड़ गई है। युवक-वृन्द साफ-सुथरे कपड़े पहनने, पक्की सड़कों पर चलने, मीठा, खट्टा तथा चटपटा भोजन

करने विदेशी सामग्री से सुसज्जित बाजारों में घूमने, मेज-कुर्सी पर बैठने तथा विलासिता में फंसे रहने के आदी हो गए हैं। ग्रामीण जीवन को वे नितान्त नीरस तथा शुष्क समझते हैं। उनकी समझ में, ग्रामों में अर्धसभ्य या जंगली लोग निवास करते हैं। यदि कभी किसी अंग्रेजी स्कूल या कालेज में पढ़ने वाला विद्यार्थी किसी कार्यवश अपने किसी सम्बन्धी के यहां ग्राम में पहुंच जाता है, तो उसे वहां दो-चार दिन काटना कठिन हो जाता है। वह या तो कोई उपन्यास साथ ले जाता है, जिसे अलग बैठे पढ़ा करता है, या पड़े-पड़े सोया करता है! किसी ग्रामवासी से बातचीत करने से उसका दिमाग थक जाता है, या उससे बातचीत करना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। ग्रामवासी जमींदार या रईस जो अपने लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाते हैं, उनकी भी यही इच्छा रहती है कि जिस प्रकार हो सके उनके लड़के कोई सरकारी नौकरी पा जाएं। ग्रामीण बालक जिस समय शहर में पहुंचकर शहरी शान को देखते हैं, इतनी बुरी तरह से उन पर फैशन का भूत सवार हो जाता है कि उनके मुकाबले फैशन बनाने की चिन्ता किसी को भी नहीं! थोड़े दिनों में उनके आचरण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और वे स्कूल के गन्दे लड़कों के हाथ में पड़कर बड़ी बुरी-बुरी कुटेवों के घर बन जाते हैं। उनसे जीवन-पर्यन्त अपना ही सुधार नहीं हो पाता। फिर वे ग्रामवासियों का सुधार क्या खाक कर सकेंगे ?

असहयोग आन्दोलन में कार्यकर्त्ताओं की इतनी अधिक संख्या होने पर भी सबके सब शहर के प्लेटफार्मों पर लेक्चरबाजी करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। ऐसे बहुत थोड़े कार्यकर्त्ता थे, जिन्होंने ग्रामों में कुछ कार्य किया। उनमें भी अधिकतर ऐसे थे, जो केवल हुल्लड़ कराने में ही देशोद्धार समझते थे! परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन में थोड़ी-शिथिलता आते ही सब कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। इसी कारण महामना देशबन्धु चितरंजनदास ने अन्तिम समय में ग्राम-संगठन ही अपने जीवन का ध्येय बनाया था। मेरे विचार से ग्राम संगठन की सबसे सुगम रीति यही हो सकती है कि युवकों में शहरी जीवन छोड़कर ग्रामीण-जीवन के प्रति प्रीति उत्पन्न हो। जो युवक मिडिल, एण्ट्रेन्स, एफ० ए०, बी० ए० पास करने में हजारों रुपए नष्ट करके दस, पन्द्रह बीस या तीस रुपए की नौकरी के लिए ठोकरें खाते फिरते हैं। उन्हें नौकरी का आसरा छोड़कर कोई उद्योग जैसे—बढ़ईगीरी, लुहारगीरी,

राजगीरी इत्यादि सीख लेना चाहिए। यदि जरा साफ सुथरे रहना हो तो वैद्यक सीखें। किसी बड़े ग्राम या कस्बे में जाकर काम शुरू करें। उपरोक्त कामों में से कोई काम भी ऐसा नहीं है, जिसमें चार या पांच घण्टा मेहनत करके तीस रुपए मासिक की आय न हो जाए। ग्राम में तीस रुपये मासिक शहर के साठ रुपये से अधिक हैं, क्योंकि ग्राम में लकड़ी कपड़ों का मूल्य बहुत कम होता है और यदि किसी जमींदार की कृपा हो गई और एक सूखा हुआ वृक्ष कटवा दिया तो छः महीने के लिए ईंधन की छुट्टी हो गई। शुद्ध घी, दूध सस्ते दामों में मिल जाता है और स्वयं एक या दो गाय या भैंस पाल ली, तब तो आम के आम गुठलियों के दाम ही मिल गए। चारा सस्ता मिलता है। घी-दूध बाल बच्चे खाते हैं। कंडों का ईंधन होता है और यदि किसी की कृपा हो गई तो फसल पर एक या दो भुस की गाड़ी बिना मूल्य ही मिल जाती है। अधिकतर कामकाजियों को गांव में चारा, लकड़ी के लिए पैसा खर्च नहीं करना पड़ता। हजारों अच्छे-अच्छे ग्राम हैं, जिनमें वैद्य, दर्जी, धोबी निवास ही नहीं करते। उन ग्रामों के लोगों को दस, बीस कोस दूर दौड़ना पड़ता है। वे इतने दुःखी होते हैं कि जिसका अनुमान करना कठिन है। विवाह आदि के अवसरों पर यथासमय कपड़े नहीं मिलते। काष्टादिक औषधियां बड़े-बड़े कस्बों में नहीं मिलतीं। यदि मामूली अत्तार बनकर ही कस्बे में बैठ जाएं, और दो-चार किताबें देख कर ही औषधि दिया करें तो भी तीस-चालीस रुपए मासिक की आय तो कहीं गई ही नहीं। इस प्रकार उदर निर्वाह तथा परिवार का प्रबन्ध हो जाता है। ग्रामों की अधिक जनसंख्या से परिचय हो जाता है। परिचय ही नहीं, जिसका एक समय जरूरत पर काम निकल गया, वह आभारी हो जाता है। उसकी आंख नीची रहती है। आवश्यकता पड़ने पर वह तुरन्त सहायक होता है। ग्राम में कौन ऐसा पुरुष है जिसका लुहार, बढ़ई, धोबी, दर्जी, कुम्हार या वैद्य से काम नहीं पड़ता? मेरा पूर्ण अनुभव है कि इन लोगों की भले-भले ग्रामवासी खुशामद करते रहते हैं।

रोजाना काम पड़ते रहने से और सम्बन्ध होने से यदि थोड़ी-सी चेष्टा की जाए और ग्रामवासियों को थोड़ा-सा उपदेश देकर उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाए तो बड़ी जल्दी काम बने। अल्प समय में ही वे सच्चे स्वदेश भक्त खद्दरधारी बन जाएं। यदि उनमें एक दो शिक्षित हों तो उत्साहित करके उसके पास एक समाचार पत्र मंगाने का प्रबन्ध

कर दिया जाए। देश की दशा का भी उन्हें कुछ ज्ञान होता रहे। इसी तरह सरल-सरल पुस्तकों की कथाएं सुनाकर उनमें से कुप्रथाओं को भी छुड़ाया जा सकता है। कभी-कभी रामायण या भागवत की कथा सुनाया करे। यदि नियमित रूप से भागवत की कथा कहे तो पर्याप्त धन भी चढ़ावे में आ सकता है, जिससे एक पुस्तकालय स्थापित कर दे। कथा कहने के अवसर पर बीच-बीच में चाहे कितनी राजनीति का समावेश कर जाए, कोई खुफिया पुलिस का रिपोर्टर नहीं बैठा जो रिर्पोट करे। वैसे यदि कोई खद्दरधारी ग्राम में उपदेश करना चाहे तो तुरन्त ही जमींदार पुलिस में खबर कर दे और यदि कस्बे के वैद्य, लड़के पढ़ाने वाले अथवा कथा कहने वाले पण्डित कोई बात कहें तो सब चुपचाप सुनकर उस पर अमल करने की कोशिश करते हैं और उन्हें कोई पूछता भी नहीं। इसी प्रकार अनेक सुविधाएं मिल सकती हैं, जिनके सहारे ग्रामीणों की सामाजिक दशा सुधारी जा सकती है। रात्रि-पाठशालाएं खोलकर निर्धन तथा अछूत जातियों के बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। श्रमजीवी संघ स्थापित करने में शहरी जीवन तो व्यतीत हो सकता है, किन्तु इसके लिए उनके साथ अधिक समय खर्च करना पड़ेगा। जिस समय वे अपने-अपने काम से छुट्टी पाकर आराम करते हैं, उस समय उनके साथ वार्तालाप करके मनोहर उपदेशों द्वारा उनको उनकी दशा का दिग्दर्शन कराने का अवसर मिल सकता है। इन लोगों के पास वक्त बहुत कम होता है। इसलिए बेहतर यही होगा कि चित्ताकर्षक साधनों द्वारा किसी उपदेश करने की रीति से, जैसे लालटेन द्वारा तस्वीरें दिखाकर या किसी दूसरे उपाय से उनको एक स्थान पर एकत्रित किया जा सके, तथा रात्रि पाठशालाएं खोलकर उन्हें तथा उनके बच्चों को शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया जाए। जितने युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करके व्यर्थ में धन व्यय करने की इच्छा रखते हैं। उनके लिए उचित है कि वे अधिक से अधिक अंग्रेजी के दसवें दर्जे तक की योग्यता प्राप्त कर किसी कला-कौशल के सीखने का प्रयत्न करें और उस कला कौशल द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करें।

जो धनी-मानी स्वदेश-सेवार्थ बड़े-बड़े विद्यालयों तथा पाठशालाओं की स्थापना करते हैं, उनको चाहिए कि विद्यापीठों के साथ-साथ उद्योगपीठ शिल्पविद्यालय तथा कलाकौशल भवनों की स्थापना भी करें। इन विद्यालयों के विद्यार्थियों के नेतागीरी के लोभ से बचाया जाए।

विद्यार्थियों का जीवन सादा हो और विचार उच्च हों। इन्हीं विद्यालयों में एक-एक उपदेशक विभाग भी हो, जिसमें विद्यार्थी प्रचार करने का ढंग सीख सकें। जिन युवकों के हृदय में स्वदेश सेवा के भाव हों, उन्हें कष्ट सहन करने की आदत डालकर सुसंगठित रूप से ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसका परिणाम स्थायी हो। केथोराइन ने इसी प्रकार कार्य किया था। उदर-पूर्ति के निमित्त केथोराइन के अनुयायी ग्रामों में जाकर कपड़े सीते या जूते बनाते और रात्रि के समय किसानों को उपदेश देते थे। जिस समय से मैंने केथोराइन की जीवनी (The Grandmother of the Russian Revolution) का अंग्रेजी भाषा में अध्ययन किया, मुझपर उसका प्रभाव पड़ा। मैंने तुरन्त उसकी जीवनी 'केथोराइन' नाम से हिन्दी में प्रकाशित कराई। मैं भी उसी प्रकार काम करना चाहता था, पर बीच में ही क्रान्तिकारी दल में फंस गया। **मेरा तो अब यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि अभी पचास वर्ष तक क्रान्तिकारी दल को भारत वर्ष में सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि यहां की स्थिति उसके उपयुक्त नहीं। अतएव क्रान्तिकारी दल का संगठन करके व्यर्थ में युवकों के जीवन को नष्ट करना और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि बड़ी भारी भूले हैं। इससे लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना बहुत अधिक है। नवयुवकों को मेरा अन्तिम सन्देश ही है कि वे रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्याग कर सच्चे देश-सेवक बनें। पूर्ण-स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें।** फल की इच्छा छोड़कर सच्चे प्रेम से कार्य करें, परमात्मा सदैव उनका भला ही करेगा।

यदि देश-हित मरना पड़े मुझको सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊं कभी।
हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशपकारक कर्म हो।

अन्तिम समय की बातें

आज 16 दिसम्बर, 1927 ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं, जबकि 19 सितम्बर, 1927 ई० सोमवार (पौष कृष्ण 11 सम्वत् 1984 वि०) को 6½ बजे प्रातःकाल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतएव नियत समय

पर इहलीला संवरण करनी होगी। यह सर्वशक्तिमान् प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता आत्मा को जन्म मरण के बन्धन में पड़ना ही होता है यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन-सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा किन्तु अपने लिए यह दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्राकृतिक पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हुकूमत न करे। सारे संसार में जनतन्त्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है। अतएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतन्त्र न हो जाएं, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि उसकी पवित्र वाणी—'**वेद वाणी**' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं। सम्भव है कि मैं मार्ग-निर्धारण में भूल करूं, पर इसमें मेरा कोई विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी अल्पज्ञ जीव मात्र ही हूं। भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े, और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म में सुबुद्धि प्रदान करे ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूं, वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का उल्लेख कर देना उचित समझता हूं, जो काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध में सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात् घटित हुई। 6 अप्रैल 1927 ई० को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। 18 जुलाई 1927 ई० को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ की सजाएं बढ़ी और एकाध की कम भी हुई। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रान्त के गर्वनर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था, जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रान्तिकारी दल से कोई सम्बन्ध नहीं रखूंगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अन्तिम दया-प्रार्थना पत्र में, जो मैंने चीफ कोर्ट के जज को



दिया था, कर दिया था, किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमे की बहस लिखकर भेजी जो छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी उन्हें बड़ा सन्देह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यन्त्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चात्ताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का चीफ कोर्ट का आद्योपान्त फैसला पढ़ने से भली-भांति विदित होता है कि मुझे मृत्यु-दण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्त्ताओं पर लांछन लगाये हैं अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, अतएव रामप्रसाद सब से बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में मांगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रान्तीय गवर्नर तथा फिर वाइसराय के पास दया-प्रार्थना की गई। रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खां के मृत्यु-दण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन-पत्र दिया। मेरे पिता ने ढाई सौ रईस, ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना पत्र भेजा, किन्तु श्रीमान् सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी! उसी समय लेजिस्लेटिव असेम्बली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट के 78 सदस्यों

ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थना-पत्र भेजा कि 'काकोरी षड्यन्त्र के मृत्युदण्ड पाए हुओं को मृत्युदण्ड की सजा बदलकर दूसरी सजा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि ये लोग पश्चात्ताप करें तो सरकार दण्ड कम दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चात्ताप प्रकट कर दिया है।' किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेम्बली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्युदण्ड न दिया जाए। इतना होने पर सबको आशा थी कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्युदण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयदशमी से दो दिन पहले जेलों को तार भेज दिए गये कि दया नहीं होगी सबकी फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल ने तार सुनाया, तो मैंने कह दिया कि आप अपना काम कीजिए। किन्तु सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट् के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम-सा बना रखा है कि प्रत्येक फांसी के कैदी की ओर से जिसकी दया-भिक्षा की अर्जी वाइसराय के यहां से खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट् के नाम से प्रान्तीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल इंग्लैण्ड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वाइसराय द्वारा अपील खारीज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवी-कौंसिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से मालूम था। वहां से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएं की? इस प्रकार से प्रश्न उठ सकते हैं। मेरी समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली-भांति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उनपर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किए गए, तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि, सरकार के पास पूरा सबूत है। खुली अदालत

में अभियोग चलाने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती हैं। यदि आर्डिनेन्स के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम-केस आर्डिनेन्स के बाद चले। खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ, और भी कुछ हथियारों के मुकदमे खुली अदालत में चलाए गए, किन्तु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यन्त्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किये गए। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे, पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध बंधेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेक को भयंकर षड्यन्त्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इसी प्रकार काकोरी के षड्यन्त्रकारियों के लेखबद्ध-प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों न किया? बात यह है कि 'जबरा मारे रोने न देय।' मुझे तो भली-भांति मालूम था कि संयुक्त प्रान्त में जितने राजनैतिक अभियोग चलाये जाते हैं, उनके फैसले खुफिया पुलिस के इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबलों की हत्या के अभियोग में नितान्त निर्दोष नवयुवकों को फंसाया गया और सी० आई० डी० वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यन्त्र में भी अन्त में ऐसा ही हुआ। **सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लम्बी-लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किये। काकोरी के मृत्युदण्ड पाये हुओं की दया-प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं।** सरकार ने बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सो काकोरी वालों ने किया। मृत्युदण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शान्ति भंग होने अथवा किसी विप्लव हो जाने की सम्भावना न थी। विशेषतया जबकि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू-मुसलमान असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यन्त्रकारियों की इतनी बड़ी

सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पासा सीधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। **सर विलियम मेरिस** ने ही स्वयं शाहजहांपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के अभियुक्तों के मृत्युदण्ड रद्द किये हैं, जिनको कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्युदण्ड ही उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजाएं ऐसे समय माफ की गई थी, जबकि नित्य नये हिन्दू-मुस्लिम दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मृत्युदण्ड माफ करके, दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था ? मगर वहां तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उसमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामेंट में भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड के तथा अन्य मजदूर दल के नेताओं के भाषणों से भली-भांति समझ में आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूं कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू-मुसलिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरे और कस दो। गए थे रोजा छोड़ने नमाज गले पड़ गई! भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के भी अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध किया है, और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू-मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मृत्युदण्ड वालों की दया-प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी रामप्रसाद का क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बन सकते हैं, तब क्या भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम

पर हिन्दू-मुसलमान अपने निजी छोटे-छोटे फायदों का खयाल न करके आपस में एक नहीं हो सकते ?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती हैं। मैं तो अपना कार्य कर चुका। मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में पूर्णतया उत्तीर्ण हुआ। अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए। पहला तजुर्बा था, जो पूरी तौर पर कामयाब हुआ। अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें। जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें। ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने सिर झुकाना पड़े, और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं। क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो। जो मैं कह रहा हूं वही श्री अशफाकउल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फांसी की कोठरियों में आमने-सामने कई दिन तक रहे थे। आपस में हर तरह की बातें हुई थीं। गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सजा बढ़ने तक श्री अशफाकउल्ला खां की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझसे मिल लेते, जो परमात्मा ने पूरी कर दी।

श्री अशफाकउल्ला खां तो अंग्रेजी सरकार से दया-प्रार्थना करने पर राजी ही न थे। उनका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबन्द करीम के अलावा किसी दूसरे से दया-प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया-प्रार्थना की थी। इसका दोषी मैं ही हूं, जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाकउल्ला खां को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया। मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल में श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा-प्रार्थना की थी। परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी या नहीं। खैर!

परमात्मा की ऐसी ही इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएं उनके कार्य को देखकर सुखी हों। जब हम नवीन शरीर धारण करके देश-सेवा में योग देने को उद्यत हों, उस समय तक भारत वर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुशिक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जाएं।

प्रिवी कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्युदण्ड उपयुक्त नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के खयाल से मृत्युदण्ड दिया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रान्त का नेता भी मैं ही था। अतएव मृत्युदण्ड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फांसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएं सब स्वीकार होतीं। पर ऐसा क्यों होने लगा? **मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनैतिक अभियोग चले तो वे कभी भूलकर के भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबियत आये तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो यही राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें।** काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी-कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख टलवा कर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इसमें मुझे बड़ी निराशापूर्ण असफलता हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके, तो जेल से निकल भागूं। ऐसा हो जाने से सरकार को अन्य तीनों फांसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यहीं तो हृदय पर आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा षड्यन्त्रकारी दल खड़ा

किया था, वहां से मुझे प्राण-रक्षा के लिए रिवाल्वर तक न मिल सका! एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका! अन्त में फांसी पा रहा हूं। फांसी पाने का मुझे कोई भी शोक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि परमात्मा को यही मंजूर था। **मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लें।** यदि देश-सेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देश-सेवा हो सकती है, जो ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आन्दोलनों में परिश्रम प्राय: व्यर्थ जाता है। **जिनकी भलाई के लिए करो, वही बुरे-बुरे नाम धरते हैं और अन्त में मन-ही-मन कुढ़-कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।**

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से।

चन्द राष्ट्रीय अशआर और कविताएं

मेरी यह इच्छा हो रही है कि मैं उन कविताओं में से भी चन्द का यहां उल्लेख कर दूं, जो कि मुझे प्रिय मालूम होती हैं और मैंने यथासमय कण्ठस्थ की थीं।

—रामप्रसाद 'बिस्लिम'

(1)

भूखे प्राण तजैं भले, केहरि खरु नहिं खाहिं।
चातक प्यासे ही रहें, बिन स्वांती न अघाहिं॥
बिन स्वांती न अघाहिं, हंस मोती ही खावे।
सती नारि पतिव्रता नेक नहि चित्त डिगावे॥
मिमि 'प्रताप' नहिं डिगे, होहिं चह सब किन रुखे।
अरि सन्मुख नहिं नवैं, फिरैं चह बन-बन भूखे॥

(2)

चाह नहीं है सुर बाला के गहनों में गूंथा जाऊं।
चाह नहीं है प्यारी के गल पडूं हार में ललचाऊं॥
चाह नहीं है राजाओं के शव पर मैं डाला जाऊं।
चाह नहीं है देवों के सिर चढूं भाग्य पर इतराऊं॥
मुझे तोड़कर हे वनमाली उस पथ में तू देना फेंक।
मातृभूमि हित शीश चढ़ाने जिसपथ जावें वीर अनेक॥

(3)

भारत जननि तेरी जय हो, विजय हो!
तू शुद्ध और ज्ञान की आगार,
तेरी विजय सूर्य माता उदय हो॥
हों ज्ञान सम्पन्न जीवन सुफल होवे,
संतान तेरी अखिल प्रेममय हो॥
आयें पुनः कृष्ण देखें दशा तेरी,
सरिता सरों में भी बहता प्रणय हो॥
सावर के संकल्प पूरण करें ईश,
विघ्न और बाधा सभी का प्रलय हो॥
गांधी रहें और तिलक फिर यहां आवें,
अरविंद, लाला, महेन्द्र की जय हो॥
तेरे लिए जेल हो स्वर्ग का द्वार,
बेड़ी की झनझन में वीणा की लय हो॥
कहना खलिल आज हिन्दू—मुसलमान,
सब मिल के गावो जननि तेरी जय हो॥

(4)

कोउ न सुख सोया कर के प्रीति
सुन्दर कली सेमर की देखी, सुअनाने मन मोहा। कर के प्रीति० ॥
मारी चोंच भुआ जब देखा पटक-पटक सिर रोया। कर के प्रीति० ॥
सुन्दर कली कमल की देखी भंवरा का मन मोहा। कर के प्रीति० ॥
सारी रैन सम्पुट में बीती, तड़प-तड़प जी खोया। कर के प्रीति० ॥

(5)

तू वह मये खुबी है, ऐ जलवये जानानां।
हर गुल है तेरा बुलबुल, हर शमा है परवाना॥

मस्ती में भी सर अपना साकी के कदम पर हो।
इतना तो करम करना, ऐ लगजिशे मस्ताना॥
यारब इन्हीं हाथों से पीते रहें मस्ताना।
यारब वही साकी हो, यारब वही पैमाना॥
आंखें हैं तो उसकी हैं, किसमस है तो उसकी है।
जिसने तुझे देखा है, ऐ जलवा-ऐ जानानां॥
छेड़ो न फरिश्तों तुम जिक्रे गमे जानानां।
क्यों याद दिलाते हो भूला हुआ अफसाना॥
ये चश्में हकीकी भी, क्या तेरे सिवा देखें।
सिजदे से हमें मतलब काबा हो या बुतखाना॥
साकी को दिखा देंगे अन्दाज फकीराना।
टूटी हुई बोतल है टूटा हुआ पैमाना॥

(6)

मुर्ग दिल मत रो यहां आंसू बहाना है मना।
अंदलीबों को क़फ़स में चहचहाना है मना॥
हाय जल्लादी तो देखो कह रहा सय्याद यह।
वक्ते जिबहा बुलबुलों को फड़फड़ाना है मना॥
हजरते इन्सान को पानी पिलाना है मना।
मेरे खूं से हाथ रंग कर बोले क्या अच्छा रंग।
अब उन्हें तो उम्र भर मेंहदी रचाना है मना॥
ऐ मेरे जख्मे जिगर नासूर बनना है तो बन।
क्या करूं इस जख्म पर मरहम लगाना है मना॥
खूने दिल पीते हैं अगसर खाते हैं लख्ते जिगर।
इस क़फ़स के कैदियों को आबोदाना है मना॥

(7)

वतन की आबरू का पास देखें कौन करता है।
सुना है आज मक़तल में हमारा इम्तहां होगा॥
जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज।
न जाने बादे मुर्दन मैं कहां और तू कहां होगा॥
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा॥

इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही जमी होगी और अपना आसमां होगा॥

(८)

इम्तहां सब का कर लिया हम ने,
सारे आलम को आजमा देखा,
नजर आया न कोई अपना अजीज,
आंख जिसकी तरफ उठा देखा।
कोई अपना न निकला महरमे राज,
जिसको देखा सो बेनफ़ा देखा।
अलगरज़ सब को इस जमाने में,
अपने मतलब का आशना देखा।

(९)

हैफ़ हम जिस पै कि तैयार थे मर जाने को।
यकबयक हम से छुड़ाया उसी काशाने को॥
आसमां क्या यही बाकी था गजब ढाने को।
लाके गुरबत में जो रखा हमें तड़पाने को॥
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को॥ 1॥
फिर न गुलशन में हमें लायेगा सय्याद कभी।
क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फ़रियाद कभी॥
याद आयेगा किसे यह दिले नाशाद कभी।
हम भी इस बाग में थे कैद से आजाद कभी॥
अब तो काहे को मिलेगी यह हवा खाने को॥ 2॥
दिल फिदा करते हैं कुरबान जिगर करते हैं।
पास जो कुछ है वह माता की नज़र करते हैं॥
खाना-वीरान कहां देखिये घर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं॥
जाके आबाद करेंगे किसी वीराने को ॥ 3॥
देखिये कब यह असीराने मसीबत छूटें।
मादरे-हिन्द के अब भाग खुलें या फूटें॥
देश सेवक सभी अब जेल में मूँजें कूटें।
हम यहां ऐश से दिन-रात बहारें लूटें॥
क्यों न तरजीह दें इन जीने पे मर जाने को॥ 4॥

कोई माता की उमीदों पे न डाले पानी।
जिन्दगी भर को भेज के काले पानी॥
मुंह में जल्लाद हुए जाते हैं छाले पानी।
आब खंजर का पिला कर के दुआ ले पानी॥
भरने क्यों जाएं हम इस उम्र के पैमाने को॥ 5॥
हम भी आराम उठा सकते थे घर रहकर।
हमको भी पाला था मां-बाप ने दुःख सह-सहकर॥
वक्ते रुखसत उन्हें इतना भी न आया कहकर।
गोद में आंसू जो टपकें कभी रुख से बहकर॥
तिफ़ल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को॥ 6॥
देश-सेवा ही का बहता है लहू नस-नस में।
अब तो खा बैठे हैं चित्तौर के गढ़ की कस्में॥
सर फरोशी की अदा होती हैं यूं ही रसमें।
भाई खंजर से गले मिलते हैं सब आपस में॥
बहनें तैयार चिताओं पे हैं जल जाने को॥ 7॥
नौजवानों जो तबीयत में तुम्हारी खटके।
याद कर लेना कभी हमको भी भूले-भटके॥
आप के उज़वे बदन होवें जुदा कट-कट के।
और सर चाक हो माता का कलेजा फटके॥
पर न माथे पे शिकन आये कसम खाने को॥ 8॥
अपनी किस्मत में अज़ल से ही सितम रक्खा था।
रंज रक्खा था मुहिन रक्खा था गम रक्खा था॥
किसको परवाह थी और किसमें यह दम रक्खा था॥
हमने जब बादिये गुरबत में कदम रक्खा था॥
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को॥ 9॥
अपना कुछ गम नहीं पर खयाल आता है।
मादरे हिन्द पै कब तक यह जवाल आता है॥
हरदयाल आता है योरुप से न पाल आता है।
कौम अपनी पै तो रह-रह के मलाल आता है॥
मुंतजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को॥ 10॥
मैकदा किसका है यह जामे सबू किसका है।
वार किसका है मेरी जा यह गुलू किस का है॥
जो बहे कौम की खातिर वह लहू किसका है।

आसमां साफ बता दे तू उदू किस का है॥
क्यों नये रंग बदलता है ये तड़पाने को॥ 11॥
दर्द मंदों से मुसीबत की न हालत पूछो।
मरने वालों से जरा लुत्फ़ शहादत पूछो॥
चश्म मुश्ताक से कुछ दीद की हसरत पूछो।
कुश्तये नाज से ठोकर की कयामत पूछो॥
सोज़ कहते हैं किसे पूछो तो परवाने को॥ 12॥
बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें।
देश के वास्ते कुरबान करें सब जानें॥
लाख समझाये कोई एक न उसकी मानें।
कहता है खून से मत अपना गरेबां सानें॥
नासिहा आग लगे तेरे इस समझाने को॥ 13॥
न मयस्सर हुआ राहत में कभी मेल हमें।
जान पर खेल के आया न कोई खेल हमें॥
एक दिन को भी न मंजूर हुई 'बेल' हमें।
याद आयेगा बहुत लखनऊ का जेल हमें॥
लोग तो भूल ही जायेंगे इस अफसाने को॥ 14॥
नौजवानो! यही मौका है उठो खुल खेलो।
खिदमते कौम में जो बला आये खुशी से झेलो॥
देश के सदक़ में माता को जवानी दे दो।
फिर मिलेंगे न यह माता की दुआयें ले लो॥
देखें कौन आता है इरशाद बजा लाने को॥ 15॥

(11)

न किसी की आंख का नूर हूँ न किसी के दिल का करार हूं।
जो किसी के काम न आ सके, मैं वह एक मुश्तेगुबार हूं॥
न दवायें दर्दे जिगर हूं मैं न किसी की मीठी नजर हूं।
न इधर हूं मैं न उधर हूं मैं न शकेब हूं न करार हूं॥
मैं नहीं हूं नग़माये ज़ाफ़िया, मुझे सुन के कोई करेगा क्या।
मैं बड़े वियोगी की हूं सदा मैं बड़े दुःख की पुकार हूं॥
न मैं किसी का हूं दिलरुबा, न किसी के दिल में बसा हुआ।
मैं जमीन की पीठ का बोझ हूं मैं फलक के दिल का गुबार हूं॥
मेरा बखत मुझसे बिछड़ गया, मेरा रंग-रूप बिगड़ गया।
जो चमन खिजा से उजड़ गया मैं उसी की फसले बहार हूं॥

कोई पढ़ने फ़ातहा आये क्यों कोई आके शमा जलाये क्यों।
कोई चार फूल चढ़ाये क्यों कि मैं बेकसी का मज़ार हूं॥
न 'जफ़र' मैं किसी का रकीब हूं न मैं किसी का हबीब हूं।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूं, जो उजड़ गया वह दयार हूं॥

(11)

उरियानी न हैरानी न थे पांव में छाले।
हम भी थे कभी आह बड़े नाजों के पाले॥
जुल खाया मिटे उड़ गई आजादी ओ राहत।
अल्लाह यह दिन अपने तो दुश्मन पै भी न डाले॥
मारा है मिटाया है हमें, आह! उन्हीं ने।
कर बैठे थे हम जानो जिगर जिन के हवाले॥
हम ने तो हमेशा तेरी खुशनूदी ही चाही।
खुद बिगड़े मगर काम तेरे सारे सम्भाले॥
उसका यह सिला हमको मिला उफ़री मुहब्बत।
बरबाद किया डाल दिये जान के लाले॥
बेबस हुए ज़लील हुए मिट तो चुके हम।
अब और कयामत भी जो ढाना हो सो ढाले॥
सौगन्द है तुझ को तेरे उस जोरो जफा की।
जी भर के हमें जितना सताना हो सता ले॥
किस्मत का कभी अपने भी चमकेगा सितारा।
हम भी कभी देखेंगे आज़ादी का उजाले॥
बदले की लहर तब तेरे सर चढ़ के कहेगी।
था जहर पै केचुल से या लाचार थे काले॥

(12)

मानुस हों तो वहीं रसखान बसों ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पशु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हो तो वही गिरि को जो कियौ ब्रज छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं वहिं कालिन्दी कूल कदंब के डारन॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारों।
आठहूं सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की धेनु चराय बिसारों।
रसखान सदा इन नैनन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारों।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारों॥

परिशिष्ट एक

पृष्ठ-भूमि

जब श्रद्धेय श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने मुझे यह बताया कि वे पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' की फांसीघर में लिखी हुई आत्मकथा पुनः प्रकाशित करने की बात सोच रहे हैं, तो साथ ही उन्होंने यह चिन्ता व्यक्त की कि उसे ज्यों-का-त्यों छापना उचित है या नहीं, क्योंकि इस सम्बन्ध में कुछ लोगों को सन्देह है। इस पर मैंने छूटते ही यह राय दी कि किसी को भी एक शहीद की अन्तिम धरोहर में अपनी इच्छानुसार काटछांट करने का अधिकार नहीं है और वह ज्यों-की-त्यों छपनी चाहिए।

मुझे काकोरी षड्यन्त्र या भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में इस अवसर पर कुछ नहीं कहना है, क्योंकि उस सम्बन्ध में मेरा वक्तव्य 'सशस्त्र-क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास' तथा 'क्रान्तिकारी की आत्मकथा' में प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त समय-समय पर मैंने कुछ अन्य पुस्तकें भी लिखी—जैसे 'चन्द्रशेखर आजाद', 'रामप्रसाद 'बिस्मिल', इत्यादि-इत्यादि, जिनमें से अधिकांश अब अप्राप्य हैं। समय-समय पर इस सम्बन्ध में बहुत से लेख भी लिखे हैं। 'राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास' नामक बृहत् पुस्तक में मैंने सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में पुराने क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्थान और उसका हाल बताने की चेष्टा की है।

मेरा इस सम्बन्ध में जो सबसे महत्त्वपूर्ण वक्तव्य रहा, वह संक्षेप में यों है—क्रान्तिकारी आन्दोलन भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का एक अविभाज्य अंग है। यह एक सर्वसम्मत मत रहा कि जहां तक त्याग और तपस्या का सम्बन्ध है, भारत के क्रान्तिकारी स्वतन्त्रता आन्दोलन के शीर्ष स्थान पर रहे। जब कांग्रेस केवल नौकरी मांगने वाले लोगों की एक संस्था मात्र रही जो बड़े दिन के अवसर पर मिला करती थी, उस समय भी क्रान्तिकारी फांसी के तख्ते पर जा रहे थे। इस उपादान को तो सभी स्वीकार करते हैं, पर यह बहुत कम लोगों को मालूम है कि विचारधारा के क्षेत्र में भी क्रान्तिकारी सबसे आगे रहे। कांग्रेस ने तो

लाहौर अधिवेशन 1929 में पूर्ण स्वतन्त्रता का नारा दिया, पर क्रान्तिकारी उस समय भी पूर्ण स्वतन्त्रता का जयघोष कर रहे थे, जब गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के मामूली-मामूली अधिकारों के लिए लड़ना शुरू भी नहीं किया था। यहां तक कि जब 1921 में असहयोग आन्दोलन छिड़ा, जिससे कांग्रेस के ढांचे को बदलकर रख दिया, उस समय भी गांधी जी ने कांग्रेस के लक्ष्य की परिभाषा नहीं की, यद्यपि बाबू भगवानदास जैसे लोग बार-बार लक्ष्य की परिभाषा का आग्रह कर रहे थे। **जब यह आन्दोलन बहुत जोरों पर था, उस समय होने वाले अहमदाबाद अधिवेशन में गांधीजी ने हसरत मोहानी द्वारा पेश किये हुए पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव का विरोध किया।**

अब समाजवाद के लक्ष्य को लीजिए। कांग्रेस ने आवड़ी में समाजवादी ढांचे के समाज को अपना लक्ष्य करार दिया, पर जब 1921 असहयोग आन्दोलन को चौरी-चौरा हत्याकाण्ड के बहाने से वापस ले लिया गया और पुराने क्रान्तिकारियों ने फिर से क्रान्तिकारी संगठन किया, तो उन्होंने अपने सामने एक ऐसे समाज को लक्ष्य के रूप में रखा, जिसमें मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण असम्भव होगा। पण्डित रामप्रसाद 'बिस्मिल' जिस 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' के नेताओं में से थे, उस दल के 'पीले कागज' नाम से उल्लिखित संविधान में यह लक्ष्य इन्हीं शब्दों में वर्णित था। जब काकोरी षड्यन्त्र चला और पुराने क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो गए, और दल की बागडोर चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिंह आदि लोगों के हाथ में आई तो उन्होंने दल का नाम बदलकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एशोसिएशन या आर्मी' रख दिया यह लगभग 1927-28 की बात है। स्मरण रहे कि उस समय तक भारत में सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना नहीं हुई थी और कम्युनिस्ट पार्टी की भी नाममात्र कागजी रूप से ही स्थापना हुई थी। **कांग्रेस ने तो इसके लगभग तीस साल बाद समाजवाद का नारा दिया, वह नारा कहां तक केवल नारेबाजी मात्र है और कहां तक ईमानदारी पूर्ण है, इसे तो भविष्य का इतिहास ही बतला सकता है।**

दूसरे शब्दों में मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन पर जो कुछ लिखा, उसमें केवल कुछ व्यक्तियों के वीरतापूर्ण कृत्यों को ही महत्त्व नही

दिया, बल्कि मैंने अकाट्य तथ्यों के आधार पर ये प्रमाणित किया है कि विचारों और चिन्तन की दृष्टि से भी यह पुराने क्रान्तिकारी अग्रणी रहे। स्मरण रहे कि यहां विचार तथा चिन्तन शब्द से मैं जबानी जमाखर्च को नहीं लेता हूं, क्योंकि जबानी जमा-खर्च तो सभी कर सकते हैं और सच तो यह है कि विश्वविद्यालय के अध्यापक इस कार्य को अधिक सुचारु रूप से कर सकते हैं। पर मैं ऐसे चिन्तन को चिन्तन मानता ही नहीं और न ऐसे चिन्तन की इतिहास पर कोई छाप ही पड़ती है, जो गद्देदार कुर्सियों पर बैठकर ऊंचे-ऊंचे आदर्शों के बखान तक सीमित हो। चिन्तन के साथ-साथ कार्य भी होना चाहिए। उस कार्य में जोखिम उठाना और बलिदान करना ही चिन्तन की असलियत को प्रमाणित करता है। केवल यही नहीं जैसा कि अब लगभग विस्तृत इटैलियन क्रान्तिकारी मैजिनी ने कहा था—"Ideas ripen quickly when nourished by the blood of martyrs." (यानी शहीदों के रक्त से पुष्ट होकर ही विचार जल्दी परिपक्व होते हैं।) सच तो यह है विचार या चिन्तन तब तक उस बिजली के तार की तरह हैं, जिसमें अभी करेण्ट नहीं है, जब तक कि उसके लिए जोखिम न उठाया जाए। जब विचार जनता की थाती का अंश बन जाता है, तभी उसमें इतिहास-निर्माण की शक्ति आती है।

क्रान्तिकारी शहीद जनता से अपने ही ढंग से सम्पर्क बनाते थे। इस प्रक्रिया को भी बहुत कम लोगों ने समझा है। हम इस सम्बन्ध में केवल एक-दो बात कहकर असली विषय पर आवेंगे।

जिस समय 1908 के अलीपुर जेल में पिस्तौल मंगाकर मुखबिर नरेन्द्र गोस्वामी का काम तमाम करने वाले **कन्हाईलाल दत्त** को फांसी दी गई और उनकी लाश चिता पर चढ़ाई गई, उस समय एक लाख आदमी उस चिता के इर्द-गिर्द खड़े होकर दहाड़ मार-मारकर रो रहे थे। जब शहीद का नश्वर शरीर जल गया तो यह विराट् जनता चिता की ओर लपकी और कुछ क्षण बाद वहां राख का एक कण भी नहीं दिखाई पड़ा। लोगों ने गण्डा-ताबीज बनाने के लिए राख लूट ली थी, ताकि उनकी सन्तानें भी उसी तरह निर्भीक, वीर और देश-भक्त हों।

इसी प्रकार उस घटना की याद की जाए, जब **सरदार भगतसिंह** ने केन्द्रीय असेम्बली में बम डाला था और साथ-ही-साथ कुछ पर्चे फेंके थे, जिनका प्रारम्भ एक फ्रेन्च क्रान्तिकारी के इन शब्दों से होता

था—'बहरों को सुनाने के लिए धड़ाके की जरूरत है।'

साथ ही उन्होंने 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा पहले-पहल भारत बुलन्द किया, जो तब से भारत के हर प्रकार के क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रधान नारा बन चुका है। जब भगतसिंह तथा उनके साथी राजगुरु और सुखदेव को फांसी हुई, तो उस समय भारत में कैसी उथल-पुथल मची, इसका विवरण उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में मिल सकता है। **स्वयं श्री जवाहरलाल नेहरू ने यह लिखा है कि उन दिनों भारत में भगतसिंह की जनप्रियता गांधी जी से किसी प्रकार कम नहीं थी।** इस प्रकार यह स्पष्ट है कि क्रान्तिकारियों के कुछ अपने विचार थे, ये उन विचारों के लिए लड़ने-मरने को तैयार थे, साथ ही उनके अपने तरीके थे, जिनसे वे जनता को प्रभावित करते थे। उन क्रान्तिकारियों ने भारत के मानस-पटल पर कितनी गहरी छाप डाली है, इसका प्रमाण हमें गत दस वर्षों में प्रकाशित होने वाले हिन्दी उपन्यासों और कहानियों में भी एक हद तक मिल सकता है, जिनमें जब भी पात्र-पात्रियों में कोई बौद्धिक तर्क-वितर्क होता है तो क्रान्तिकारी जरूर आ जाते हैं।

सूत्र रूप में इस प्रकार एक पृष्ठभूमि तैयार कर लेने के बाद अब मैं असली विषय पर आता हूं। क्रान्तिकारी सामूहिक रूप से बहुत ऊंचे लोग थे। बात यह है कि जो उस उच्चता से उतरता था और कई लोग उतरकर मुखबिर तक हो जाते थे, वे क्रान्तिकारी रहते ही नहीं थे, यानी उनका नाम फौरन उस सूची से कट जाता था। इसीलिए क्रान्तिकारी शब्द अपने शुद्ध रूप में ही रहता था।

पर जब हम वैयक्तिक सतह पर उतरते हैं तो हम देखते हैं कि केवल भारत के ही नहीं सभी देशों के क्रान्तिकारी राग-द्वेषपूर्ण होते हैं, उनमें भलाई और बुराई दोनों पाई जाती हैं। पण्डित रामप्रसाद की आत्मकथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिस समय संघर्ष की लौ धीमी पड़ जाती है, उस समय कई तरह की छोटाइयां सामने आती हैं। ठीक भी है क्योंकि क्रान्तिकारी तो तभी तक महान् है जब तक कि वह अपने युग का वाहन है। जब उसका यह वाहनत्व कमजोर पड़ जाता है और वैयक्तिक बातें उभर कर सामने आती हैं तो आप उनकी आंखों को उधेड़ कर देख सकते हैं कि उनमें भी उसी प्रकार से तमाम तरह की

चीजें भरी होती हैं, जो दूसरे लोगों में पाई जाती हैं।

अब मैं ऐसी बातें लिखने जा रहा हूं, जो मैंने क्रान्तिकारी आन्दोलन सम्बन्धी अपनी किसी भी पुस्तक में पहले नहीं लिखी, क्योंकि उसकी जरूरत नहीं थी। अब जबकि यह आत्मकथा जनता के हाथों में जाएगी तो कई तरह के प्रश्न उठेंगे। पण्डित रामप्रसाद जी ने जो बातें लिखी हैं, उनमें सबसे अधिक प्रश्न इस बात पर उठेंगे कि क्या पण्डित जी ने अपने दल के बंगाली नेताओं के सम्बन्ध में जो बातें लिखी हैं, वे सच हैं ? अब देखिये कि काकोरी षड्यन्त्र में कौन-कौन नेता बंगाली नेता थे। सर्वोपरि **श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल** थे, जो दल के प्रधान नेता थे। वे रासबिहारी बोस के दाहिने हाथ समझे जाते थे और स्वदेशी या बंग-भंग युग से क्रान्तिकारी आन्दोलन में थे। प्रथम महायुद्ध के समय बनारस षड्यन्त्र में उन्हें नेता करार दिया गया था और उन्हें आजीवन कालेपानी की सजा दी गई थी। युद्ध में अंग्रेजों की जीत हो जाने पर आम माफी में सैकड़ों दूसरे क्रान्तिकारियों के साथ अण्डमान से वे भी रिहा कर दिये गए। असहयोग के जमाने में वे चुपचाप रहे और ज्यों ही असहयोग आन्दोलन समाप्त हुआ, त्यों ही क्रान्तिकारी संगठन करने के लिए मैदान में कूद पड़े। वे बहुत ऊंचे दर्जे के विद्वान् थे और उन्हें काकोरी षड्यन्त्र में बाद को चलकर आजीवन कालेपानी की सजा हुई थी। उससे रिहा होने के बाद वे दूसरे महायुद्ध के समय नजरबन्द कर लिए गए। उसी अवस्था में उन्हें तपेदिक हो गया और सन् 1942 में जब उनके लगभग सभी पुराने साथी जेल में थे वे रोग के कारण छोड़ दिये गए और थोड़े ही दिनों में उनका देहान्त हो गया। उनकी लिखी हुई कई पुस्तकें हैं, जिनमें '**बन्दी जीवन**' क्रान्तिकारियों का क्लासिक बन गया था।

उस समय के दूसरे बंगाली नेता **श्री योगेशचन्द्र चटर्जी** थे। वे भी बहुत पुराने जमाने से क्रान्तिकारी आन्दोलन में थे और सन् 1916 से 1919 तक रेगुलेशन 3 के अनुसार नजरबन्द रहे। उसके बाद ये अनुशीलन दल की ओर से उत्तर भारत में क्रान्तिकारी संगठन करने के लिए आए। बाद को इनका संगठन शचीन्द्रनाथ सान्याल के संगठन के साथ एक हो गया और इस संयुक्त दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया, जिसके प्रधान नेता शचीन्द्रनाथ सान्याल बने।

शचीन्द्रनाथ सान्याल संगठनकर्त्ता और बम बनाने के विशेषज्ञ थे। अच्छे लेखक भी थे और दल की ओर से समय-समय पर गुप्त रूप से बांटे गए परचों के लेखक भी वे ही थे। पर योगेशचन्द्र चटर्जी बहुत अच्छे संगठनकर्त्ता होने के साथ ही डकैती आदि कार्य में भी प्रवीण थे। वे इस लेख के लिखते समय संसद-सदस्य हैं।

योगेशचन्द्र को काकोरी षड्यन्त्र में आजन्म कालेपानी की सजा मिली और बारह साल तक जेल में रहने के बाद वे जब छूटे तो थोड़े दिन बाहर रहने के बाद दूसरे महायुद्ध में फिर जेल भेज दिए गए और इस बार 1946 तक जेल में रहे।

तीसरे बंगाली नेता **श्री सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य** थे। वे भी प्रथमयुद्ध के समय नजरबन्द थे और इसके बाद काकोरी षड्यन्त्र में उनको दस साल की सजा हुई। वे इस समय शहीद गणेशंकर विद्यार्थी द्वारा प्रवर्तित कानपुर के **'दैनिक प्रताप'** के मुख्य सम्पादक हैं।

चौथे बंगाली नेता **श्री गोविन्दचरण कार** थे, जो प्रथम महायुद्ध के समय पुलिस से सीधी मुठभेड़ में गोली लगी हुई हालत में पकड़े गए थे और अण्डमान भेज दिए गए थे। बाद को वे काकोरी षड्यन्त्र में शामिल हुए। अभी-अभी साल भर हुआ, उनका देहान्त हो गया।

ये ही चार बंगाली नेता थे। बाकी शचीन्द्रनाथ बख्शी, राजकुमार सिंह, शचीन्द्रनाथ विस्वास, भूपेन्द्र सान्याल और मैं दल के नेताओं में नहीं, बल्कि नौजवान कार्यकर्त्ताओं में थे। काकोरी षड्यन्त्र में गिरफ्तार होते समय मेरी उम्र सत्रह साल की थी। राजेन्द्र लाहिड़ी को इसमें मैं इसलिए नहीं गिन रहा हूं कि उन्हें पण्डित रामप्रसाद के साथ ही फांसी की सजा मिली।

यह स्पष्ट है कि पण्डित रामप्रसाद ने जिन बंगाली नेताओं का जिक्र किया है उनमें **शचीन्द्रनाथ सान्याल, योगेशचन्द्र चटर्जी, गोविन्दचरण कार** और **सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य** ही हो सकते हैं। बाकी बंगाली क्रान्तिकारी जैसा कि मैं कह चुका, कार्यकर्त्ता मात्र थे। स्वयं मुझे तो पण्डित राम प्रसाद के ही नेतृत्व में अधिक काम करने का मौका मिला और कभी किसी प्रकार की बदमजगी हुई हो ऐसा याद नहीं आता।

फिर भी पण्डित रामप्रसाद जो बातें इस सम्बन्ध में लिख गए हैं,

वे बिलकुल कार्य-कारण सम्बन्ध से बाहर नहीं हैं, जैसा कि आगे चलकर पाठकों को मालूम हो जाएगा।

दल के अन्दर स्वाभाविक रूप से दो भाग थे, एक संगठन पर जोर देता था और दूसरा अस्त्र-शस्त्र संग्रह करता था, डकैतियों की योजना बनाता था और उन्हें कार्यान्वित करता था। शेषोक्त भाग के नेता पण्डित रामप्रसाद थे, क्योंकि मैनपुरी षड्यन्त्र के सिलसिले में उन्हें डकैतियां डालने तथा अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर ज्ञान हो गया था। जैसा कि मैंने अपनी आत्मकथा में विस्तार के साथ लिखा है, आतंकवादी क्रान्तिकारी दलों में कई बार अफसरों की हत्या करने और डकैतियां डालने को मुख्यता देने की प्रवृत्ति होती है और उसमें जो लोग भाग लेते हैं, वे दल के नेता बन जाते हैं। पर दूसरे लोग ऐसे लोगों को बार-बार असली लक्ष्य की ओर सन्नद्ध करते रहते हैं। इस प्रकार कुछ तनातनी की सृष्टि हो सकती है।

हम लोग 1925 के सितम्बर को गिरफ्तार कर लिए गए, शचीन्द्रनाथ सान्याल और योगेशचन्द्र चटर्जी इसके पहले गिरफ्तार हो चुके थे, सान्याल को राजद्रोह में सजा हुई थी और योगेशचन्द्र चटर्जी नजरबन्द थे। ये दोनों नेता अपनी-अपनी जेलों से काकोरी षड्यन्त्र के मुकदमे में लाए गए।

यद्यपि बनवारीलाल, बनारसीदास और इन्दुभूषण मुखबिर बन गए थे, फिर भी पुलिस को काफी झूठी गवाहियां और सबूत एकत्र करने पड़े। मुकदमा डावांडोल था, क्योंकि यदि इस्तगासे की तरफ से पण्डित जगतनारायण मुल्ला थे तो हमारी तरफ से एक डिफेन्स कमेटी थी, जिससे पण्डित मोतीलाल नेहरू, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, श्री जवाहरलाल नेहरू, बाबू श्री प्रकाश आदि किसी न किसी रूप में संयुक्त थे और हमारे वकीलों में पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त, चन्द्रभान गुप्त, मोहनलाल सक्सेना साथ ही कलकत्ता के प्रसिद्ध बैरिस्टर बी० के० चौधरी थे। इसलिए पुलिस को भरोसा नहीं था कि मुखबिरों और झूठी गवाहियों के बावजूद वह सब को सजा दिलवा सकेगी।

इस कारण पुलिस की ओर से हमारे नेता यानी सर्वोपरि शचीन्द्रनाथ सान्याल से पुलिस वालों की बातचीत चली। बंगाल के क्रान्तिकारी इतिहास में ढाका षड्यन्त्र का एक उदाहरण मौजूद था, जिसमें पुलिस



वालों में और गिरफ्तार क्रान्तिकारियों में समझौता हुआ था। इसके अनुसार क्रान्तिकारियों ने कुछ हद तक दूसरों को बिना फंसाए हुए अपना जूर्म स्वीकार कर लिया था और उसके फलस्वरूप पुलिस वालों ने दो-एक आदमियों पर जो फांसी तथा कालेपानी का मुकदमा बनता था, उसे इतना नरम कर दिया था कि वह साबित ही न हो। नतीजा यह हुआ कि सब लोगों को थोड़ी-थोड़ी सजा हो गई थी, पर किसी को बड़ी सजा नहीं हुई थी।

इसी तरीके पर यहां भी बातचीत चली और स्वाभाविक रूप से यह बातचीत शचीन्द्रनाथ सान्याल के साथ चली। अवश्य वे इसकी सूचना दूसरे नेताओं यानी पण्डित रामप्रसाद, योगेशचन्द्र, सुरेशचन्द्र, विष्णुशरण दुबलिस, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी आदि को देते थे। हम लोगों तक इसकी भनक ही आती थी। कभी कोई प्रामाणिक बात नहीं आई। हां जब सजा आदि हो गई और हम लोग जेलों में तितर-बितर कर दिये गए, फांसियां भी हो गईं, तब इसका ब्यौरेवार पता चला।

संक्षेप में इतना ही बताया जाए कि हमारे नेता समझौते में इस बात पर अड़ रहे थे कि किसी को फांसी न हो जाए। इस बात से पण्डित रामप्रसाद को ही सबसे अधिक फायदा था (अवश्य दल को फायदा उस से अधिक था) क्योंकि यह तो सभी को मालूम था और हमारे वकील भी यही कहते थे कि यदि काकोरी षड्यन्त्र में किसी एक व्यक्ति को भी फांसी होती है, तो पण्डित रामप्रसाद को जरूर होगी, बाकी किसे फांसी होगी या नहीं होगी, इस सम्बन्ध में मतभेद था। दूसरे शब्दों में शचीन्द्रनाथ सान्याल तथा उनके सलाहकार, पण्डित रामप्रसाद के साथ-साथ अन्य फांसी वालों को बचाने के लिए ही यह वार्ता चला रहे थे।

पर पुलिस वालों ने शायद हिसाब लगा-लगूकर यह देखा कि समझौते के बिना ही उनकी कार्य सिद्धि हो जाएगी, क्योंकि हमारा

अंग्रेज जज हैमिल्टन बहुत सख्त आदमी था। उसकी शोहरत यह थी कि वह जहां गुंजाइश रहती थी वहां फांसी जरूर देता था, बड़ी सजाओं की तो बात ही नहीं है। इसलिए एकाएक पुलिसवालों ने वार्ता चलानी बन्द कर दी, पर शचीन्द्रनाथ सान्याल ने एक सुयोग्य नेता की तरह किसी को भी कानों-कान इसकी खबर नहीं होने दी, क्योंकि जो आशा बंधी थी, उसे वे तोड़ना नहीं चाहते थे। अब तक वे पण्डित रामप्रसाद से तथा अन्य लोगों से इस मामले में सलाह लेते थे, पर अब उन्होंने इस सम्बन्ध में एकाएक चुप्पी साध ली और यह कहते रहे कि वार्ता चल रही है, पर उसका ब्यौरा नहीं देते थे। विशेषकर उन लोगों को नहीं देते थे, जिनको फांसी होने की जरा भी सम्भावना थी।

ऐसा मालूम होता है कि पण्डित रामप्रसाद ने इसका यह अर्थ लगाया कि भीतर-भीतर बातचीत जारी है और अब शचीन्द्रनाथ सान्याल फांसी की सम्भावना युक्त लोगों को खुदा के भरोसे छोड़कर पुलिस से कोई ऐसा पेंच चला रहे हैं, जिससे कि वह संकट से छूट जाएं या उन्हें नाम मात्र की सजा हो, इत्यादि। इसी कारण उनके मन में उनके विरुद्ध भावनाएं उत्पन्न हुईं और वे भीतर-भीतर बुदबुदाती रहीं।

पण्डित रामप्रसाद की सारी पृष्ठभूमि का यदि हम अध्ययन करें तो हम देखेंगे कि उनका इस प्रकार सन्देह करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। काकोरी षड्यन्त्र के पहले वे मैनपुरी षड्यन्त्र में फरार थे। उससें ऐसा हुआ था कि जब सबको सजा हो गई और 1919 में आम माफी का समय आया, उस समय जेल के अन्दर के सजायाफ्ता क्रान्तिकारियों ने सरकार से कुछ समझौता कर लिया, जिसके फलस्वरूप वे आम माफी में शामिल कर लिए गए, पर इसमें भी मुकुन्दीलालजी को शामिल नहीं किया गया, जो बेचारे आम माफी में नहीं छूटे और पूरी सजा काटते रहे। यह मुकुन्दीलालजी बाद को चलकर काकोरी षड्यन्त्र में आ गए और उन्हें आजन्म कालेपानी की सजा मिली। मैनपुरी षड्यन्त्र में भी जो लोग फरार थे, उनको भी उक्त समझौते का कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिए मैनपुरी षड्यन्त्र के भूतपूर्व सदस्य होने के नाते पण्डित रामप्रसाद का यह सन्देह कुछ अनुचित नहीं था और चूंकि काकोरी षड्यन्त्र में परिस्थिति यह थी कि शचीन्द्रनाथ सान्याल ही नेता थे और योगेशचन्द्र चटर्जी से वह सलाह लेते थे, इसीलिए यदि पण्डित

रामप्रसाद का क्रोध सारे बंगाली नेताओं, यहाँ तक कि बंगालियों पर चला गया, तो इस पर हमें विशेष आश्चर्य नहीं है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शचीन्द्रनाथ सान्याल ने रामप्रसाद बिस्मिल को समझौते की असफलता के सम्बन्ध में पूरी बात न बताकर 'वार्ता जारी है', ऐसा स्वांग रचा, यह कहां तक उचित था? पण्डित रामप्रसाद तपे हुए पुराने क्रान्तिकारी थे, और उनसे यह आशा की जा सकती थी कि वे इस बुरी खबर को, जिसका अर्थ निश्चित फांसी था, अच्छी तरह झेल लेते, जैसा कि उन्होंने बाद को बड़ी बहादुरी के साथ फांसी चढ़कर प्रमाणित कर दिया। पर केवल पण्डित रामप्रसाद की बात ही नहीं थी, दूसरे ऐसे लोगों की भी बात थी, जिनको फांसी की सम्भावना थी। पण्डित रामप्रसाद को तो पूरी बात बताना ठीक होता, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर दूसरों का दिल पहले से दुखाने या निराश करने की कोई जरूरत नहीं थी।

मैंने सारी बात पाठकों के सामने रख दी, पाठक इस पर अपनी राय बना सकते हैं। इस सम्बन्ध में दोनों मत के लोग मिलेंगे। शचीन्द्रनाथ सान्याल ने ठीक किया हो या न किया हो, उसके लिए उन पर अधिक-से-अधिक यही दोष लग सकता है कि उन्होंने सही फैसला नहीं किया, उन पर कोई पक्षपात या नैतिक अपराध लागू नहीं हो सकता, पर केवल इतनी-सी बात पर पण्डित रामप्रसाद ने उन नेताओं की निन्दा ही नहीं की बल्कि उन पर प्रान्तीयता का जो आरोप लगाया, वह सम्पूर्ण रूप से अनुचित था, यद्यपि, जैसा कि मैं पहले ही लिख चुका हूं, यह दुर्भाग्यपूर्ण परिणति कार्य-कारण से बाहर नहीं थी।

यदि एक या चार या पांच दस बंगाली क्रान्तिकारियों ने गलती की भी, (मैं दिखा चुका हूं कि उन्होंने कोई गलती नहीं की) तो भी इस को वह रूप देना, जो पण्डित जी ने दिया, सम्पूर्ण रूप से अप्रत्याशित और अनुचित था। इससे अच्छा तो यह था कि वे नाम लेकर उन्हें भविष्य-पीढ़ियों के सामने बुरा कह जाते और उन पर स्पष्ट अभियोग लगाते।

मैं इस अप्रिय और दुर्भाग्यपूर्ण विषय पर इससे अधिक नह कहना चाहता। कहीं मैं गलती न कर जाऊं, इसलिए जो कुछ मैं लि रहा हूं, उसके सम्बन्ध में मैंने उस समय के अन्यतम नेता और इस सम

संसद-सदस्य अपने अग्रज तुल्य मित्र श्री विष्णुशरण दुबलिस से बातचीत कर ली है और उन्होंने मुझसे पूरी सहमति प्रकट की है। इस सम्बन्ध में मेरे विद्वान् मित्र भी भगवानदास माहौर के वे वक्तव्य भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं, कि जब पण्डित रामप्रसाद की आत्मकथा प्रकाशित हुई, उसके बाद भी क्रान्तिकारी आन्दोलन बराबर चलता रहा और उसमें सभी प्रान्तों के लोग कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करते रहे, और किसी मौके पर किसी में कोई प्रान्तीयता देखने में नहीं आई। इसके अलावा मैं एक बात पर और ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जिन दो व्यक्तियों पर पण्डित रामप्रसाद की बातें विशेषकर लागू होती हैं, उनमें से शचीन्द्रनाथ सान्याल बाद को भी बराबर एक हुतात्मा की तरह काम करते रहे और उसी में वे शहीद भी हो गए। सौभाग्य से योगेश दादा अभी तक जीवित हैं और वे एक जीवित शहीद ही कहे जा सकते हैं।

यहां यह बात और उल्लेखनीय है कि श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल, सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य, श्री चटर्जी और श्री कार को छोड़कर उस समय के सभी बंगाली कार्यकर्त्ता उत्तर प्रदेश के ही निवासी थे और उनका सारा राजनैतिक जीवन इसी प्रदेश में गुजरा है श्री चटर्जी और श्री कार भी काकोरी षड्यन्त्र के बाद उत्तर भारत प्रदेश के ही निवासी हो गए और यहीं इनका राजनैतिक जीवन व्यतीत हुआ। श्री चटर्जी आज भी संसद् में उत्तर प्रदेश का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

आशा है कि पाठक सारी बातों पर गहराई के साथ विचार करेंगे और शहीद की आत्मकथा को उसी रूप से पढ़ेंगे जिस रूप से सभी साहित्य पढ़ना चाहिए यानी **'यान्यस्माकं सुचरितानि तान्येव त्वयोपास्यानि नो इतराणि।'**

—मन्मथनाथ गुप्त

परिशिष्ट दो

मेरी डायरी का एक पृष्ठ

मां फिर रो पड़ीं।

अशफाक और बिस्मिल का यह शहर कालेज के दिनों में मेरी कल्पना का केन्द्र था। फिर क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य बनने के बाद काकोरी के मुखबिर की तलाश में काफी दिनों तक इसकी धूल छानता रहा था। अस्तु, जहां जाने पर पहली इच्छा हुई बिस्मिल की मां के पैर छूने की। काफी पूछताछ के बाद उसके मकान का पता चला। छोटे-से मकान की एक कोठरी में दुनिया की आंखों से अलग वीर-प्रसविनी अपने जीवन के अन्तिम दिन काट रही है—Unknown, unnoticed। पास जाकर मैंने पैर छुए। आंखों की रोशनी प्रायः समाप्त-सी हो चुकने के कारण पहचाने बिना ही उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और पूछा, "तुम कौन हो?" क्या उत्तर दूं; कुछ समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद उन्होंने फिर पूछा, "कहां से आये हो बेटा" इस बार साहस करके मैंने परिचय दिया—"गोरखपुर जेल में अपने साथ किसी को ले गईं थीं, अपना बेटा बनाकर?" अपनी ओर खींचकर सिरपर हाथ फेरते हुए मां ने पूछा, "तुम वही हो बेटा? कहां थे अब तक? मैं तो तुम्हें बहुत याद करती रही, पर जब तुम्हारा आना एकदम ही बन्द हो गया तो समझी कि तुम भी कहीं उसी रास्ते पर चले गए।" मां का दिल भर आया। कितने ही पुराने घावों पर एक साथ ठेस लगी। अपने अच्छे दिनों की याद, बिस्मिल की याद, फांसी, तख्ता, रस्सी और जल्लाद की याद, जवान बेटे की जलती हुई चिता की याद और न जाने कितनी यादों से उनके ज्योतिहीन नेत्रों में पानी भर आया—बात छेड़ने के लिए मैंने पूछा, "रमेश (बिस्मिल का छोटा भाई) कहां है?" मुझे क्या पता था कि मेरा प्रश्न उनकी आंखों में बरसात भर लाएगा। वे जोर से रो पड़ीं। बरसों का रुका बांध टूट पड़ा सैलाब बनकर। कुछ देर बाद अपने को सम्भालकर उन्होंने अपनी कहानी सुनानी आरम्भ की।

आरम्भ में लोगों ने पुलिस के डर से उनके घर आना छोड़ दिया। वृद्ध पिता की कोई बंधी हुई आमदनी न थी। कुछ साल बाद रमेश

बीमार पड़ा। दवा-इलाज के अभाव में बीमारी जड़ पकड़ती गई। घर का सब कुछ बिक जाने पर भी रमेश का इलाज न हो सका। पथ्य और उपचार के अभाव में तपेदिक का शिकार बनकर एक दिन वह मां को निपूती छोड़कर चला गया। पिता को कोरी हमदर्दी दिखाने वालों से चिढ़ हो गई। वे बेहद चिड़चिड़े हो गए। घर का सब कुछ तो बिक ही चुका था। अस्तु, फाकों से तंग आकर एक दिन वे भी चले गए, मां को संसार में अनाथ और अकेली छोड़कर! पेट में दो दाना अनाज तो डालना ही था। अस्तु, मकान का एक भाग किराये पर उठाने का निश्चय किया। पुलिस के डर से कोई किरायेदार भी नहीं आया और जब आया तब पुलिस का ही एक आदमी! लोगों ने बदनाम किया कि मां का सम्पर्क तो पुलिस से ही हो गया है। उनकी दुनिया से बचा हुआ प्रकाश भी चला गया। पुत्र खोया, लाल खोया, अन्त में बचा था नाम, सो वह भी चला गया।

उनकी आंखों से पानी की धार बहते देखकर मेरे सामने गोरखपुर फांसी की कोठरी घूम गई। काकोरी के चारों अभियुक्तों के जीवन का फैसला हो चुका था—To be hanged by the neck till they dead[1]। फांसी के एक दिन पहले अन्तिम मुलाकात का दिन था। समाचार पाकर पिता गोरखपुर आ गए। मां का कोमल हृदय शायद इस आघात को सम्भाल न सके, यही समझकर उन्हें वे साथ न लाये थे। प्रातः हम लोग जेल के फाटक पर पहुंचे तो देखा कि मां वहां पहले से ही मौजूद है! अन्दर जाने के समय सवाल आया मेरा, मुझे कैसे अन्दर ले जाया जाए, उस समय मां का साहस और पटुता देखकर सभी दंग रह गए। मुझे खामोश रहने का आदेश देकर उन्होंने मुझे अपने साथ ले लिया। पूछने पर यह कह दिया, "मेरी बहन का लड़का है।" हम लोग अन्दर पहुंचे। मां को देखकर रामप्रसाद रो पड़े, किन्तु मां की आंखों में आंसुओं का लेश भी न था। उन्होंने ऊंचे स्वर में कहा—"**मैं तो समझती थी कि मेरा बेटा बहादुर है, जिसके नाम से अंग्रेजी सरकार भी कांपती है। मुझे नहीं पता था कि वह मौत से डरता है। तुम्हें यदि रोकर ही मरना था तो व्यर्थ इस काम में आये।**" बिस्मिल ने आश्वासन दिया— "आंसू मौत से डर कर नहीं वरन् मां के प्रति मोह के थे। मौत से मैं नहीं डरता

---

1. प्राण निकल जाने तक गले में फंदा डालकर लटका दिया जाए।

मां, तुम विश्वास करो।'' मां ने मेरा हाथ पकड़कर आगे कर दिया। यह तुम्हारे आदमी हैं। पार्टी के बारे में जो चाहो इनसे कह सकते हो। उस समय मां का स्वरूप देखकर जेल के अधिकारी तक कहने को बाध्य हुए कि **बहादुर मां का बेटा ही बहादुर हो सकता है।**

उस दिन समय पर विजय हुई थी मां की और आज मां पर विजय पाई है समय ने। आघात पर आघात देकर उसने उनसे बहादुर हृदय को भी कातर बना दिया है। जिस मां की आंखों के दोनों ही तारे विलीन हो चुके हों उसकी आंखों की ज्योति यदि जाए तो इसमें आश्चर्य ही क्या? वहां तो रोज ही अंधेरे बादलों से बरसात उमड़ती रहेगी।

कैसी है यह दुनिया, मैंने सोचा। एक और 'बिस्मिल जिन्दाबाद' के नारे और चुनाव में वोट लेने के लिए बिस्मिल द्वार का निर्माण और दूसरी ओर उनके घरवालों की परछाईं तक से भागना और उनकी निपूती बेवा मां पर बदनामी की मार! एक ओर शहीद परिवार सहायक फण्ड के नाम पर हजारों का चन्दा और दूसरी ओर पथ्य और दवादारू तक के लिए पैसे के अभाव में बिस्मिल के भाई का टी०बी० से घुटकर मरना! क्या यही है शहीदों का आदर और उनकी पूजा?

फिर आऊंगा मां, कहकर मैं चला आया, मन पर न जाने कितना बड़ा भार लिए।

—शिव वर्मा

शाहजहांपुर
23 फरवरी, 1946

परिशिष्ट तीन

मेरे भाई बिस्मिल

मेरा जन्म सन् 1901 में हुआ था। भाई रामप्रसाद बिस्मिल के चार साल बाद मैं पैदा हुई थी। भाई जी मुझ पर बहुत स्नेह रखते थे। मेरे पिता के खानदान में लड़कियों को होते ही मार डालते थे। मुझे मारने के लिए बाबा और दादी ने मेरी माताजी को कहा, मगर माता जी ने नहीं मारा। भाई बहुत रोते थे कि बिटिया को मत मारो। मैं तीन महीने की हो गई थी, तब दादी ने माताजी से फिर ताना मारकर कहा कि क्या लड़का है, जो इसकी इतनी हिफाजत करती है। माताजी ने बाबा के पास से अफीम मंगाकर मुझे पिला दी। पड़ोस में थानेदार का मकान था। उनकी पत्नी हमारे घर आती थीं। उन्होंने मेरी खराब हालत देखी और कहा कि इसे क्या दे दिया? मैं दरोगाजी से कहूंगी। उन्होंने दरोगाजी से कह भी दिया। दरोगाजी ने दादी को बुलाकर कहा कि मैं सबको गिरफ्तार करा दूंगा। तुम लोगों ने कन्या की क्यों हत्या की? तब मेरा इलाज किया गया। तीसरे दिन मुझे होश आया। फिर मां का दूध नहीं पिलाने दिया। कभी-कभी गाय का दूध छिपाकर माताजी पिला देती थी। तीन साल तक अफीम के नशे में रखा। एक मुंसिफ साहब पड़ोस में रहते थे। उनके कोई बच्चा न था। मुंसिफ की पत्नी हमारे ही घर से दूध मोल लेकर मुझे पिलाती रही! मैं चंगी होती गई। दो साल के बाद उनके भी बालक हुआ, मगर वह मेरी हिफाजत करती रही। कहने लगी, इसी कन्या के भाग्य से मेरे पुत्र हुआ। उनकी बदली हुई, तो मुझे मांगा और कहा कि मैं ही शादी करूंगी, मगर घरवालों ने नहीं दिया। भाई ने रोना शुरू किया कि मैं अपनी बिटियां को नहीं दूंगा। भाई को स्त्री समाज से बहुत प्रेम हो गया। मुझे भी बराबर साथ-साथ सन्ध्या-हवन सिखाया। आप क्रान्तिकारियों के साथ चले जाते थे। मेरे से कह जाते थे किसी से कुछ मत कहना। जो कह दिया तो जान से मार दूंगा। मैं डर से किसी से नहीं कहती थी। मैं लोअर मिडिल में जब पढ़ती थी, तब आपने रात को इश्तहार छपवा कर सरकारी जगहों पर अड़तालीस जिलों में लगवा दिए। पुलिस को पता चल गया कि रामप्रसाद ही सब में शामिल है। तब तक आप चार मित्र सलाह करके वायसराय को मारने कलकत्ता को

रवाना हो चुके थे। बीच में इलाहाबाद ठहरे। **गंगासिंह, राजाराम, देवनारायण** और **रामप्रसाद।** इन चारों में बहुत झगड़ा हो गया। रामप्रसाद का कहना था कि एक वायसराय को मारने से स्वराज्य नहीं हो सकता। जिस तरह एक रात में इश्तहार लगा दिए, इसी तरह सारे हिन्दुस्तान के अंग्रेज खत्म कर दिए जाएं, तो अच्छा हो। इन लोगों ने कहा कि पहले रामप्रसाद को ही खत्म कर दो, यही काम नहीं चलने देगा। सब अंग्रेज किस तरह खत्म हो सकते हैं। प्रातः समय त्रिवेणी के तट पर श्री रामप्रसादजी सन्ध्या कर रहे थे कि........ने तमंचा छोड़ दिया। पहली गोली का पता न चला क्योंकि ध्यान प्राणायाम में था। दूसरी गोली कान के नजदीक से होकर निकली। कुछ सनसनाहट मालूम होने पर आंख खोलकर देखा, तो सामने.....तमंचा ताने खड़े हैं। उठकर भागे। कपड़े और अपना तमंचा वहीं छूट गया। जान बचाकर एक पण्डित तिवारीजी के यहां पहुंचे। पण्डित ने धीरज बंधाया, कहा कि क्या आफत आ गई। वे अपनी पहचान के थे। कुछ देर वहां ठहरे और फिर अचानक गायब हो गए। तब तक वे सब भी तिवारीजी के यहां पहुंच गए। पूछा कि यहां रामप्रसाद आए हैं। इन्होंने कह दिया कि यहां नहीं आये। इन लोगों ने बहुत ढूंढा, मगर कहीं पता न मिला। ये लोग शाहजहांपुर आ गए। रामप्रसाद बंगाल की तरफ चले गए। उन लोगों ने समझा कि गोली लगने से त्रिवेणी में गिरकर मर गए। शाहजहांपुर में आकर कह दिया कि रामप्रसाद मारे गए। हमारे घरवालों ने सच मान लिया कि मर गए। उनका सब कारज भी कर दिया, फिर पिताजी बहुत घबड़ाए कि लड़कियों की शादी भी करनी है। मैं अकेला कमानेवाला हूं। उन्होंने मेरा पढ़ना बन्द कर दिया, अपने देश में आकर शादी का इन्तजाम किया। जिला आगरा में पिनाहट के पास एक मौजा है। उसमें मेरे पिता की ननसाल थी, उसी के पास मेरी भी ननसाल थी। वहीं से शादी का प्रबन्ध किया। भाई का कहना था कि खूब पढ़ाकर अच्छे घर शादी करूंगा, मगर भाई के न होने से एक गरीब किसान के यहां कोसमा में शादी की गई। मैं भला क्या कह सकती थी। जिस दिन शादी थी, उसी दिन भाई शाहजहांपुर आ गए। दादी ने कहा कि आज तुम्हारी बहन की शादी है, तो बहुत घबराये और उसी समय चल दिए। दूसरे दिन वहां पहुंच गए। शादी हो चुकी थी। माता-पिता तो खुशी से देखने को आये कि रामप्रसाद आ गए, सब लोग खुशी मनावें, मगर वह

अफसोस में बैठे आंसुओं से मुंह धो रहे थे। लोगों ने कहा कि क्या बात है। बहुत पूछने पर बोले कि मेरी बहन की तकदीर फूट गई, जो ऐसे घर में शादी हुई। मैंने तो अच्छा घर देखा था। अभी तो बहन की पढ़ाई भी तो बाकी है। खैर जो हुआ सो अच्छा ही है। आप एक दिन ठहरे। माताजी से कुछ रुपये लेकर विदा हो गए, पहले लश्कर को चले गए, वहां हथियारों को तलाशकर और सौदा तय करके पिनाहट आये। मेरी चौथी चलाकर शाहजहांपुर को वापस आए। आप फिर लश्कर से दो तमंचे लाये। इतने में शाहजहांपुर में हद से ज्यादा चोरियां होने लगी। पुलिस चोर-बदमाशों से मिल गई, तब इन लोगों ने, सेवा समितियों ने, अपने ऊपर इन्तजाम लिया। मिर्जापुर से लाठियां मंगाई। बल्लमें गढ़वाईं, रात-रात भर पहरा दिया। तब चोरियां बंद हुईं, फिर आप लश्कर गए, दो बन्दूक लाए। कोसमा में आकर मेरी विदा कराई। स्टेशन पर जाकर एकान्त जगह में मेरी दोनों जांघों में बन्दूक बांधकर लहंगे में छिपा दी। फिर फर्रुखाबाद धर्मशाला में ठहरे। बिस्तर में बन्दूक बांध मेरे सिरहाने रात भर रखी। आप दूर लेटे। सवेरे फिर उसी तरह बांध दीं। मैं कुछ खड़ी रहूं, कुछ सहारे से पैर फैलाकर बैठ भी जाती थी। बारह बजे दिन के बरेली पहुंच गए, वहां स्टेशन मास्टर ने भाई को पहचान कर उतार लिया। उनकी मित्रता थी। बहुत कहा कि अभी मत रोको, फिर आऊंगा, मगर वह मुझे पकड़कर ले चले मैंने बहुत कहा कि गठिया से मेरी टांगों में दर्द होता है। चलने से मजबूर हूं, मगर वह लिवा ले गए। धीरे-धीरे चले गए। भाई उदास हो गए। मगर मैं तो समझ गई। उन्होंने खाना बनवाया। मैं बाहर निकल आई और चल पड़ी। मैंने कहा—"मैं नहीं रहूंगी", उन्होंने बहुत कहा खाकर चली जाना। मैं रोने लग गई। मेरी टांगों में दर्द से बैठने में बहुत तकलीफ होती है, घर ही जाऊंगी। मैं चल पड़ी। पीछे से भाई भी चल दिए। जब गाड़ी में बैठे गए, तब बोले—"बिट्टो, तुम बहुत होशियार निकलीं। अब तो मैंने समझ लिया कि तुम सहायता दोगी।" शाहजहांपुर स्टेशन से तांगे में बैठ घर पहुंच गए। मगर माताजी को कुछ न बताया मुझसे भी मना कर दिया कि किसी को न बताना।

एक महीने बाद मैं कोसमा फिर आ गई। फिर माताजी से फुसला कर, कुछ रोजगार करना चाहता हूं पिताजी से न कहना, रुपये लेकर फिर हथियार लाना शुरू कर दिया। मैं शाहजहांपुर तक पहुंचा देती थी।

एक दिन अचानक पुलिस ने घर पर छापा मारा। भाई खाना खाने बैठे ही थे कि राजाराम को गिरफ्तार करके मेरे दरवाजे को जो आए, सो मैंने भागकर कहा कि पुलिस आ गई। भाई बोले कि कुण्डी बन्द करके मेरी सन्दूक में जितनी किताबें हों, सब मिट्टी का तेल डालकर जला दो। मैं तो जाता हूं। आप छतों-छतों सड़क पर कूद गए, सीधे स्टेशन पहुंच गाड़ी में बैठकर आगरा आ गए। फिर पिनाहट पहुंच गए। वहां कौन पकड़ सकता था? पुलिसवालों ने किवाड़ तोड़ डाले। कुण्डी खोल दी। "यह क्या जला दिया?" घुड़की दी। "रामप्रसाद कहां है? जल्दी बताओ।" हम लोगों ने कहा कि पता नहीं, ढूंढ लो। सारे सन्दूक खोल डाले। जो मिला ले गए, साइकिल उठा ले गए। पिताजी कचहरी में थे, दादी भी नहीं थी। अकेली माताजी और लड़कियां रोती रह गईं। छोटा भाई सुशीलचन्द्र गोदी में था। हम चार बहन दो भाई थे। तीन बहनों की शादी हो गई, एक दस बरस की मर गई, दो बहनें विवाह के बाद मर गईं, एक छोटी बहन तो जहर खा कर मर गई। भाई को फांसी का हुक्म हुआ, सुनकर उसने जहर खा लिया। उसकी शादी भाई ने एक जमींदार के साथ की थी। वह हम से छह मील की दूरी पर थी, कुचेरा के मौजे में। छोटा भाई बीमार हो गया, तपेदिक हो गई थी। पिताजी अस्पताल में भर्ती कर आए, डॉक्टर ने कहा कि दो सौ रुपये दो, तो हम ठीक कर सकते हैं। पिताजी ने कहा कि मेरे पास अगर रुपये होते तो यहां क्यों आता? मुझे तो गवर्नमेंट ने भेंट दिया, लड़का भी गया, पैसा भी गया। अब तो बहुत दिन हो गए। गणेशशंकर विद्यार्थी पन्द्रह रुपये मासिक देते हैं, उससे गुजारा करता हूं। एक हफ्ता अस्पताल में रहा, उसे खून के दस्त हुए, चौबीस घण्टे में खतम हो गया। दसवां दर्जा पास था। वह भी बोलने में अच्छा था। लोग कहते थे कि यह भी रामप्रसाद की तरह काम करेगा। अब इस समय मायके के सारे खानदान में मैं ही अकेली अभागिनी रह गई हूं। फिर भाई तो कुछ दिन कोसमा, कुछ दिन पिनाहट, कुछ दिन रूहर बरवाई रहे। उनके साथी बहुत पकड़े गए। मैनपुरी षड्यन्त्र केस चला। आपके साथ मैनपुरी में भी थे। जो हथियार आप लाते थे मेरे यहां रखे रहते थे। मैं इसी तरह पहुंचा देती थी। साथियों को भी लाया करते थे। फिर माता-पिता भी बहुत दुःखी होकर पिनाहट में ही रहने लगे। भाई दो साल गायब रहे। पिनाहट में आपने खेती करने के साथ-साथ साहित्य रचना भी की। आपने छह किताबें

छपाईं—मन की लहर, बोलशेविकों की करतूत, कैयोरायन, स्वदेशी रंग एवं दो बंगला से अनुवादित की। बंगला के अच्छे जानकार थे। कुछ दिनों आगरे में डॉक्टरी भी की। अपना नाम यहां बदल दिया था रूपसिंह रखा था। विरोधी लोगों को ज्ञात नहीं हुआ कि यह फरार हैं, नहीं तो पकड़वा देते। वारन्ट में दो हजार रुपये का इनाम था। एक दिन माताजी ने नाराज होकर पानी भरने के लिए कहा कि क्या लिखता रहता है कि पानी भर दे। कुछ देर हो गई। माताजी को क्रोध आ गया कि हम तेरे ही पीछे बरबाद हो गए। तेरे पढ़ने में पैसा लगाया कि कुछ पैदा करेगा। सो घर-बार से भी भेंट दिया, तेरे होने का क्या सुख, मुसीबत ही है। उसी समय आप चल पड़े। न कुछ कहा, खाली धोती—आधी ओढ़े आधी पहने। सर्दी का मौसम था। शाहजहांपुर तीसरे दिन रात को पहुंचे। एक पैसा भी पास न था। अठारह कोस आगरा पैदल गए। रास्ते में शेर मिला। आप एक बबूल के पेड़ से खड़े होकर ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि मेरा कोई कसूर है जो काल आ गया। ईश्वर की कृपा से शेर उलटा ही लौट गया। आप खड़े-खड़े देखते रहे कि वह फिर न लौट पड़े, मगर वह चला गया। आप कुछ देर बाद वहां से फिर चल दिए। आगरा पहुंचकर बिना टिकट छिपकर गाड़ी में बैठ गए। रात के बारह बज रहे थे। दादी ने पुकारा। धीरे-धीरे आवाज दी। दादी ने समझा कि कोई पुसिल का आदमी है। बोलीं, 'क्यों मुझे सताते हो!' आपने कहा कि मैं रामप्रसाद हूं। दादी, कुण्डी खोल दो, मैं पिनाहट से आया हूं। दादी ने कुण्डी खोली। बोले—''दादी आग जला दो, कुछ खाने को रखा हो तो दे दो, भूख के मारे दम निकल रहा है, तब बात कहूंगा।''

दादी ने कहा कि एक रोटी छीके पर रखी है, वह सूख गई होगी। बोले मुझे जल्दी दे दो, वह खाकर पानी पी लिया, तब बात निकली। कहा—''माताजी नाराज हुईं, इससे चला आया।'' दादी ने कहा—''तेरा तो वारण्ट जारी है।'' उन्होंने कहा—''मैं हाजिर हो जाऊंगा, जो कुछ ईश्वर की इच्छा होगी वह होगा।'' दूसरे दिन कप्तान साहब के सामने हाजिर हुए। कप्तान साहब बोला कि आप तो खतम थे, अब जिन्दा कहां से आ गए। कहां रहे? तब जवाब दिया कि मैं आगरा रहा। क्या काम करते रहे? कहा कि कुछ दिनों इलाज करते रहे। अस्पताल में डॉक्टर की ऐवजी में रहे थे। डॉक्टर मेल का था; वह छुट्टी पर चला गया था, कुछ दिनों कविता करते रहे, वह किताबें भी दिखाईं। कप्तान ने छह

महीने की नजरानी बोल दी। इतने में आपने एक रेशम के कारखाने में साठ रुपये की नौकरी कर ली। पहली तनखा पिताजी के नाम भेज दी। लिख दिया कि माताजी मेरे अपराध क्षमा कीजिए। यह रुपये रख लीजिए। अब मैं आपके ऋण को ही चुकता करूंगा। माताजी को बहुत दुःख हुआ कि रामप्रसाद को मेरा कहना बुरा मालूम हुआ। इसलिए नंगा-भूखा चला गया। कुछ दिनों पता नहीं दिया। माताजी बहुत दुखित रहती थीं। पत्र तथा रुपये आने पर शान्ति आई। आपने छह महीने नौकरी की। बाद को आधे के हिस्सेदार बन गए। किसी के साझे में कारखाना था। उस समय हम तीनों बहनें मौजूद थीं। बढ़िया तीन साड़ी बनारसी कामदार बनाईं। कातिक दौज को बहनों को दूंगा। बड़े बहनोई को साफा बनवाया। काफी पैसा पैदा किया, फिर मां-बाप को भी बुला लिया। क्रान्तिकारियों का काम बराबर करते रहे। फिर दो पिस्तौल बढ़िया, दो तमंचे, एवं दो बन्दूकें लश्कर से ले गए। शाहजहांपुर तक मैं पहुंचा आई। दो बार मैं पहुंचा सकी। एक वकील के यहां रखी और रकम भी उन्हीं के यहां रखते थे। घर खर्चे को ही देते थे। वकील साहब को पिताजी और उनकी पत्नी को माताजी कहते थे। उनके दो लड़के थे। वह भाई के समान थे। बहुत ही विश्वास था। कारखाने का नाम छोटे भाई सुशीलचन्द्र के नाम से रखा और पुस्तकों की **'सुशील माला'** भी छपवाई थी। भाई रामप्रसाद दयावान् भी अधिक थे। कोई गरीब भिक्षा मांगे तो पांच रुपये से लगाकर दस रुपये तक दे देते थे। किसी को जाड़े में ठिठुरते देखते, तो अपने तन से कपड़ा उतार कर दे देते थे, चाहे कितना ही कीमती क्यों न हो। एक दिन दादी नाराज हुई कि क्या अपनी बहन का भी खयाल है, ज़ो ग़रीब है? तू लोई इतनी कीमत की क्यों फकीरों को दे आया! कोई हलके मोल का कपड़ा दे देता। लोई बहन को ही दे आता। वैसे तो हथियारों के लाने को बड़ी बिटिया है, औरों को दुशाले! अगर वह पकड़ी जाए, तो जेल ही में तो सड़े। इतना पैसा भी नहीं छूट सके। आप बोले कि बिटिया का मुझे बहुत खयाल है। मैं दिवाली पर जाऊंगा, तब उसका सारा कर्जा निबटा दूंगा और जो साड़ी बनी रखी हैं वह तीनों को दे आऊंगा। बड़ी बिटिया से हिसाब पूछ आया हूं कि कुल कितना कर्जा है। चार सौ रुपये बताए हैं। उसे तो मैं रेशम की पहनाऊंगा। उसने मेरे बहुत काम निकाले, हथियार लाना, उनकी हिफाजत करना, मेरे न होने पर भी संभाल रखना। जब मैं शाहजहांपुर

रहती थी, तब एक चौड़ा गड्ढा था, उसमें सारे सामान रखे रहते थे। ऊपर एक तख्ता डाल दिया और मिट्टी डाल दी। आंठवें दिन उनके तेल लगाना, सुखाना पड़ता था। जब कहीं ले गए तो निकाल लिए, कुछ सामान बम्ब का भी रखते थे। एक दिन बारूद में रगड़ के जोर से आवाज हुई। आप बच गए, निकालकर भाग गए। हम लोग बहुत ही डरे, मगर मिट्टी में सब ढक दिया। एक छोटा-सा मकान अलग था। उसी में सब रहता था। उसी में उनके साथी भी छिपे रहते थे। मैं सबको खाना खिलाती थी। दूसरा कोई उस घर में नहीं जाता था। कुछ लोग आवाज सुनकर जाग पड़े। बंदूकें कहां चलीं, हम लोग भी कहने लगे, देखो, कहां से आवाज हुई। हम लोग तो सोते जाग पड़े। रामप्रसाद कहां है मालूम नहीं, वह तो कल से नहीं आया, गांव गया है। आप खड़हर गांव में पहुंच गए। पांच दिन बाद आए। थाना नजदीक था। सिपाही भी आ गए। फिर मोती चौक में एक खाली मकान था, उसमें अपना काम करने लगे। बनारसीलाल बढ़ई तथा विष्णु शर्मा, जो अभी मौजूद हैं, बराबर काम करते रहते थे, बनारसीलाल ने ही काकोरी केस में मुखबरी की थी। विष्णु शर्मा चौदह साल जेल भुगतकर आ गए—काकोरी केस में। फिर रामप्रसाद सावन में मुझे लेने आए। यहां से मुझे नहीं भेजा। आप कातिक की कह गए कि हम आवेंगे तब तक आप कुंआर की नौ दुर्गा में गिरफ्तार हो गए। नौमी का दिन था। प्रात:समय आप दातुन कर रहे थे कि पुलिस ने छापा मारा। रामप्रसाद जल्दी निकले। आपने किवाड़ खोल दिये। एक पर्चा दे दिया, उसे आप पढ़कर बोले, अभी चलता हूं। माताजी से कुछ बात करनी है। अच्छा यहीं जो कुछ कहना हो कह दीजिए। माता-पिता दोनों खड़े ही थे। पिताजी के पैर छूकर कहा माफी दीजिए। माताजी के पैरों पर सिर रखकर बोले, ''मैं आपकी सेवा कुछ भी न कर पाया, माताजी धीरज रखना,'' फिर छोटे भाई सुशीलचन्द्र को हृदय से लगाया, और कहा, ''मैं तो जाता हूं, न जाने फिर आया या न आया। देश-सेवा पर चाहे मेरा बलिदान ही क्यों न हो, मगर काम यही करूंगा। मरने से मुझे कोई डर नहीं। जेल से डर नहीं, शेर ही कटहरे में फांसी जाते हैं न कि गीदड़।'' सबको प्रणाम करते हुए हंसते हुए चल दिए। सन् 1924 में गिरफ्तार हुए। ढाई साल मुकदमा चला। सन् 25 में छोटी बहन खत्म हो गई। मेरे पुत्र पैदा हुआ। आप लखनऊ की जेल में थे, भानजे की सुनकर उत्सव मनाया। बहन की जहर खाकर

आत्म-हत्या की बात सुनकर शोक भी मनाया। अपनी जीवनी में उन्होंने सारी बातें लिखी हैं, जो उनके हाथ की लिखी हुई है। उसमें से कुछ बातें छोड़ दी हैं। हां मुख्य-मुख्य बातें आत्मकथा में हैं। आपके मुकदमे में जो कुछ था पिताजी ने लगा दिया। पिताजी बहुत दुखित हुए। रामप्रसादजी ने कहा कि अब तो बिलकुल ही रोटी को भी तबाह हो चुके, मैं परवश हूं। तब आपने.......को पत्र लिखा कि जो कुछ पैसा मेरे हिस्से का हो वह मेरे पिताजी को देना, कुल सब कारखाने का हिसाब 20,000 रुपये था, आधा दस हजार चाहिए, उसमें 1700 रुपये का कपड़ा कलकत्ता, 1200 रुपये का मद्रास, 1500 रुपये का लाहौर, 2000 रुपये का शाहजहांपुर में उधार बंटा हुआ था। उन्होंने लिखा कि लाहौर से जो पैसा मिले वह हमारी बहन को दे देना। मैंने उसको देने को कहा था बाकी थोड़ा-थोड़ा करके मेरे पिताजी को देते रहना। मगर साझी ने एक पैसा नहीं दिया। कारखाने का सामान उनके पकड़े जाने के बाद सब अपने घर को लदवा ले गए। मेरी माताजी ने कहा कि एक चरखा मेरी पुत्री को दे दो। वह अपने हाथ से ही कातकर कपड़ा बुनती है, उसी को पहनती है, मगर कुछ भी ध्यान न दिया। पछताकर बैठना पड़ा। फिर भी रामप्रसादजी ने कई बार लिखा कुछ भी न दिया, बल्कि अकड़कर पिताजी से लड़े। फिर वकील को लिखा कि अब मैं तो जेल में हूं, पिताजी मेरे जो कुछ रुपये आपके यहां हैं, वह मेरे पिताजी को दे दीजिए। उन्होंने एक पाई भी न दी। कहते रहे कि दे देंगे। अब पिताजी बहुत दुखी हुए। माताजी बिलकुल दुःख से कमजोर हो गई। गणेशशंकर विद्यार्थी ने कानपुर में 2000 रुपये चन्दा करके मुकदमे में सहायता की। फिर भी मेरे भाई को फांसी की सजा मिली। वकील साहब को अन्तिम पत्र लिखा, "पिताजी, माताजी आप लोगों ने मुझसे अच्छा प्यार किया। अब एक अन्तिम निवेदन है कि एक बन्दूक मेरी बहन को दे देना। बाकी छह हथियार आपके यहां रह जायेंगे। मेरे लिए आपने एक पत्र लिखा, माताजी को दिया बड़ी बिटिया को दे देना और धीरज बंधाती रहना। वह पत्र माताजी से कहीं किसी ने ले लिया फिर न दिया। माताजी से मालूम होने पर मुझे बहुत ही दुःख हुआ। पिताजी की हालत दुःख से खराब हुई। तब विद्यार्थी जी पन्द्रह रुपये मासिक खर्च देने लगे। उसमें कुछ गुजर चलती रही। फिर विद्यार्थीजी भी शहीद हो गए। मुझे भी बहन से ज्यादा समझते थे। समय-समय पर

खर्चा भेजते थे। माता-पिता, दादी, भाई, दो गाय थीं। रहने के लिए हरगोविन्द ने एक टूटा फूटा मकान बना दिया था, उसमें गुजारा करने लगे। वर्षा में बहुत मुसीबत उठानी पड़ी। **फिर पांच सौ रुपये पं० जवाहरलालजी ने भेजे**। तब माताजी ने कहा कि कुछ जगह ले लो। इस तरह के दुःख तो बचें। नई बस्ती में जमीन अस्सी वर्ग गज ले ली। एक छप्पर एक कोठरी थी। उसमें गुजर की। पिताजी भी चल बसे। माताजी बहुत दुःखित हुईं। एक महीने के बाद मैं भी विधवा हो गई। अब दोनों मां-बेटी दुःखित थीं। मेरे पास एक पुत्र तीन साल का था, माताजी बोलीं कि मैं तो शरीर से कमजोर हूं किस तरह दूसरे की मजदूरी करूं। बिटिया अब क्या करना चाहिए। मैंने कहा कि जहां तक मुझसे होगा, माताजी आपकी सेवा करूंगी, आप धीरज बांधो। ईश्वर की यही इच्छा थी। माताजी के पास रामप्रसाद के सोने के तीन तोले के बटन थे। उन्होंने किसी को नहीं बताया, छिपाए रहीं। जाने कैसा समय हो, इसलिए कुछ तो पास रखना चाहिए। पिताजी के स्टाम्प खजाने में दाखिल किए, दो सौ रुपये वह मिले, फिर बटन बेच दिए। फिर मैंने ईंट-लकड़ी एक चितारा तथा उसके ऊपर एक अटारी बनवाई। ऊपर माताजी ने गुजर की। नीचे का हिस्सा आठ रुपये में किराए पर उठा दिया। आठ रुपये में मैं, माताजी तथा बच्चा रहते थे, बहुत ही मुसीबत से। एक समय, वह भी कभी-कभी खाना प्राप्त होता था। मैंने एक डॉक्टर के यहां खाना बनाने का काम छह रुपये में कर लिया। कपड़े की कमी के कारण बहुत ही दुःखी रहे। बच्चा स्याना हुआ। माताजी ने सबसे फरियाद की कि कोई इस बच्चे को पढ़ा दो। कुछ कर खायेगा। मगर शाहजहांपुर में किसी ने ध्यान न दिया। मैंने अपनी मेहनत से पाचवां दर्जा पास करवा दिया, फिर तो पैसे का काम था। मजबूर हो मजदूरी से गुजरी की। कोसमा में तीन बीघा खेत था वह भी कर्जे में रखा, कभी-कभी कोसमा में भी रह जाती थी बिना पैसे कौन किसका होता है ? यहां के लोगों में से कोई भी मुंह से नहीं बोलता था। मैं अपनी मुसीबतों को लिख नहीं सकती। बहुत ही दुःख उठाए। मेरी माताजी भी बहुत दुःखित रहीं। मेरा दुःख उनको बहुत सताता था। विष्णु शर्मा चौदह साल जेल काटकर छूटकर आए तो माताजी के दर्शन को आए। माताजी जाड़े के मारे ठिठुर रही थीं। उनका दुःख देखकर चकित रह गए आपको किसी भाई ने भी मदद नहीं दी। माताजी रोकर बोली कि

मदद देने वाला तो परमात्मा है। आंसुओं की धारा लग गई। बोल बड़ी देर में निकला कि मेरी पुकार ईश्वर भी नहीं सुनते, जो इस शरीर से छुटकारा दें। विष्णु शर्मा ने अपना कम्बल उतारकर उन्हें उढ़ा दिया। बोले माताजी मैं आपकी सेवा जो होगी करूंगा। फिर उन्होंने बहुत कोशिश की। स्वराज्य होने पर माताजी की पेंशन साठ रुपये हो गई। फिर माता जी के साथ मेरी भी गुजर होने लगी। मोटा खाना-पहनना चलता रहा। पर माता जी के स्वर्गवास के बाद पेंशन बन्द हो गई और मुझ पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। लड़के को पढ़ाने को पैसा न हो सका। फिर मैनपुरी के नेता लोगों से भी फरियाद की कि आप लोग मेरे लड़के को पढ़ा दें, तो इसका जीवन सम्हल जाए। मगर अपने सुख के सामने गरीबों की कौन सुनता है? यह तो कोई नहीं सोचता कि कितने भाई कुर्बान हो गए, कितने जेलों में सड़े, और आप आज एम० एल० ए० और मिनिस्टर बन बैठे हैं। जिन्होंने अपने को बलिवेदी पर चढ़ा दिया, उनके खानदान वाले भूखों मर रहे हैं। आज दिन जो मैं अनाथ दुःखिता हूं, मेरे भाई रामप्रसादजी होते तो अपने भानजे को कितना पढ़ाते। मेरी सहायता करते। स्वराज्य में आज मैं हर तरह से मुसीबत उठा रही हूं। पर मेरी बात किसी ने भी न सुनी। मगर ईश्वर की महिमा कोई नहीं जानता। मैं बहुत दुःख के फाके कर रही थी। मेरा लड़का कुसंग में फंस गया था। वह घर से निकल गया था। एक महीने तक पता न मिला। मैं और मेरी बहू दोनों अपने दुःख में सलाह कर रहे थे कि चलो दोनों गंगाजी में डूब जाएं, कहां तक भूखों मरें? कपड़ को नंगे, एक दिन तो नहीं जो काट लें। इतने में किसी ने आवाज दी कि माताजी आपको कोई मिलने आया है। मैं फटी धोती पहने थी। शर्म से ढक कर उठी और बोली, ''भाई साहब! कैसे तकलीफ उठाई? '' उन्होंने कहा—''**चतुर्वेदी ओंकारनाथ पाण्डे** मेरा नाम है। बहनजी, मैं आपके ही दर्शन को आया हूं।'' फिर मैंने बार-बार धन्यवाद दिया। फिर पाण्डेजी ने कहा कि मेरे पास भाई बनारसीदास चतुर्वेदीजी का पत्र आया है कि कोसमा में शहीद रामप्रसाद बिस्मिलजी की बहनजी हैं। उनके यहां आप खुद जाकर देखो कि वह किस तरह गुजर करती हैं? कितनी जमीन है? वह सब देखकर मेरे लिए लिखो। मैंने अपना घर दिखाया कि आप भीतर जाकर देख सकते हैं कि मेरे पास तो पांच सेर दाने भी न होंगे, ज्यादा क्या कहूं। मेरी हालत देखकर पाण्डेजी ने पांच

रुपये दिये। मैंने चार रुपये की एक धोती ले ली, एक रुपया और खर्च में किया। उन्होंने चतुर्वेदीजी को सारा हाल लिखा, जो कुछ खुद देख गए थे। फिर चतुर्वेदीजी ने मुझे पत्र लिखा कि अपना कुछ हाल लिखो। मैंने पत्र में थोड़ा-सा समाचार अपना दिया। भाई बनारसीदास चतुर्वेदी जी ने मुझ दीन की पुकार सुनी। आपने अपील निकाली, तो अनेक भाइयों को दया आ गई। सहायता भी मिलने लगी। राष्ट्रपति महोदय और श्री कृष्णकुमार बिड़ला से लगाकर छोटे-बड़े सबने मुझपर दया की। पर मैं संकोच से उसमें से पैसा न खर्च कर सकी। चतुर्वेदी ने लिखा कि आप संकोच न करें, यह पैसा आपका ही है। आप कपड़ा बनवा लीजिए। अन्न भी लेकर रख लीजिये। अब आप मुसीबत न उठाइए। बहुत दुःख आपने सहे। मैं आपको दुःखी न होने दूंगा। चतुर्वेदी ने बहुत कोशिश करके मेरी पेंशन चालीस रुपया करवा दी है। उनको मैं कहां तक धन्यवाद दूं। उसी से हम तीन प्राणियों की जैसे-तैसे गुजर बसर हो रही है।

—शास्त्री देवी

(अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल की बहन)

आत्मकथा

रामप्रसाद 'बिस्मिल'

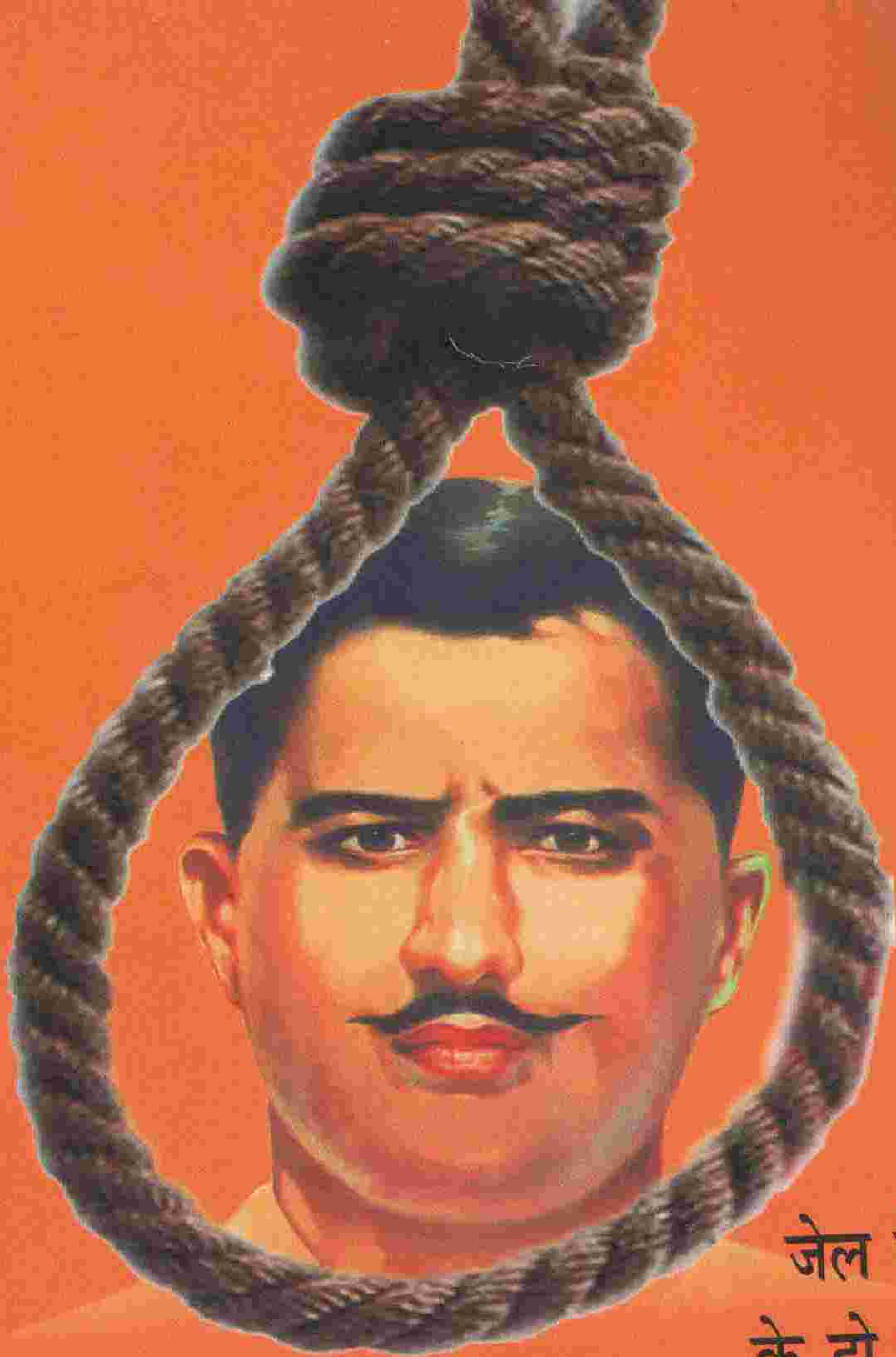
(फांसी के दो दिन पूर्व जेल में लिखी गई आत्मकथा)

सम्पादक :

बनारसीदास चतुर्वेदी

प्रकाशक :

सत्यधर्म प्रकाशन



जेल में फाँसी
के दो दिन पूर्व
लिखी हुई आत्मकथा

आत्मकथा

रामप्रसाद बिस्मिल

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ९८२९६५९
E-Mail : smcolour@gmail.com